एम्.ए.हिंदी (प्रथम सत्र)
'हिंदी साहित्य का इतिहास'
पत्र- MAHIN401

इकाई : 1

1.0 परिचय :

साहित्य नदी के प्रवाह की तरह होता है जो निरंतर गतिमान होता है| उसमें ना कोई रुकावट आती है और ना ही उसे कोई भंग करता है| हां समय के साथ-साथ उस में परिवर्तन जरूर आता रहता है और परिवर्तन के अनुरूप साहित्य को नई प्रवृत्तियां तथा नई दिशाएं मिलती हैं| किसी भी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं, विविध प्रवृत्तियों के आधार पर करना होता है| एक विशेष काल में समाज की विशेष परिस्थितियां और विचारधाराएं रहती हैं तथा उन्हीं के अनुरूप साहित्यिक रचनाएं प्रस्तुत होती हैं| आचार्य शुक्ल जी ने माना है कि- 'जब प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन होता चलता है| आदि से अंत तक इन्ही चित्तवृत्तियों की परंपरा को रखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है|'इस इकाई में साहित्य के इतिहास की आवश्यकता, उसके महत्व और लेखन के विभिन्न पक्षों को जानेंगे| इसके साथ ही विभिन्न विद्वानों ने हिंदी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किस प्रकार किया है इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे| आदिकालीन गद्य साहित्य, उसका नामकरण और सीमांकन, आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराएं, हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा, आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां और भाषा आदि की चर्चा इस इकाई की विशेषता है| प्रत्येक कवि, साहित्यकार, आलोचक या चिंतक की अपनी एक अलग दृष्टि होती है| साहित्येतिहास लेखक हर एक कवि, साहित्यकार, आलोचक, उनकी रचनाएं, उनकी भाषा, उनकी समग्र दृष्टि का अवलोकन कर अपनी एक अलग दृष्टि का निर्माण करता है और उसी के आधार पर उनके प्रति अपना मत प्रदर्शित करता है| इसके लिए उसे सामग्री संकलन, काल विभाजन, नामकरण, सीमांकन, मूल्यांकन जैसे मुख्य चरणों से गुजरना पड़ता है तब कहीं जाकर साहित्य का इतिहास अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत और प्रामाणिक बन पड़ता है|

1.1 इकाई के उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप--

. साहित्य और इतिहास के अंतर्संबंध को जान और समझ सकेंगे|
. आप यह समझ सकेंगे कि इतिहास लेखन की पद्धतियां क्या-क्या हैं?
. हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा को विस्तार से जाना जा सकेगा|
. आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि को जानते हुए उसके नामकरण और सीमांकन को समझा जा सकेगा|
. आदिकालीन साहित्य की विभिन्न धाराओं का परिचय पा सकेंगे| रासो साहित्य परंपरा

और लौकिक साहित्य आदि को जान और समझ कर व्याख्या कर सकेंगे|

. आदिकाल के गद्य साहित्य का परिचय पा सकेंगे और आदिकालीन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियां जान पाएंगे|

1.2 साहित्य का इतिहास और इतिहास लेखन की पद्धतियां :

शाब्दिक दृष्टि से इतिहास का अर्थ है 'ऐसा ही था' या 'ऐसा ही हुआ|' इससे दो बातें स्पष्ट है- एक तो यह कि इतिहास का संबंध किससे है: दूसरे यह कि उसके अंतर्गत केवल वास्तविक घटनाओं का समावेश किया जाता है| आज इतिहास शब्द को इतने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है कि उसके अंतर्गत अतीत की प्रत्येक स्थिति, परिस्थिति, घटना, प्रक्रिया और कविता की व्याख्या का समावेश हो जाता है| संक्षेप में कह सकते हैं कि अतीत के किसी भी तथ्य, तत्व एवं प्रवृत्ति के वर्णन, विवरण, विवेचन और विश्लेषण को- जो काल विशेष या काल क्रम की दृष्टि से किया गया हो- इतिहास कहा जा सकता है| प्राचीन काल से इतिहास को अध्ययन के एक विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है किंतु दृष्टिकोण एवं पद्धति के अनुसार उसका स्वरूप बदलता रहा है| इसीलिए कभी उसे कला के क्षेत्र में और कभी विज्ञान के क्षेत्र में स्थान दिया जाता रहा| आधुनिक युग में इतिहास को कला की अपेक्षा विज्ञान के ही अधिक निकट माना जाता है| प्रत्येक इतिहासकार से दृष्टिकोण की तटस्थता,तथ्यों की यथार्थता और निष्कर्षों की प्रामाणिकता की अपेक्षा की जाती है|

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि-' साहित्य का इतिहास ग्रंथों और ग्रंथकारों के उद्भव व विलय की कहानी नहीं है, वह काल स्रोत में बहे आते जीवंत समाज की विकास कथा है..... साहित्य के इतिहास में हम अपने आप को पढ़ने का ही सूत्र पाते हैं'|इतिहास के संदर्भ में साहित्य की सीमा कहां तक मानी जाए इस विषय में हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए और रस के साहित्य के अतिरिक्त ज्ञान के साहित्य का भी अंतर्भाव करना चाहिए|

1.2.1 साहित्य का इतिहास :

इतिहास के प्रति भारतीय दृष्टिकोण प्रायः आदर्शमूलक एवं आध्यात्मवादी रहा है, इसीलिए उसमें भौतिक जगत की स्थूल घटनाओं में भी आध्यात्मिक तत्व व प्रवृत्तियों के अनुसंधान की प्रवृत्ति रही है| भारतीय इतिहासकारों ने अपनी संस्कृति एवं जीवन के आदर्शों के अनुरूप इतिहास के क्षेत्र में भी संश्लेषणात्मक व समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उसमें सत्यम, शिवम, सुंदरम का प्रयास किया जो उसकी परंपराओं को देखते हुए उचित भी कहा जा सकता है| जहां भारतीय इतिहासकारों के दृष्टिकोण में आदर्शवादिता की प्रमुखता रही है वहीं पश्चात्य इतिहासकार प्रायः यथार्थवादी दृष्टिकोण से अनुप्राणित रहे हैं| इतिहास के प्रथम व्याख्याता यूनानी विद्वान हिरोदोतस इसे खोज के अर्थ में ग्रहण करते हुए इसके चार लक्षण निर्धारित किए थे- इतिहास एक वैज्ञानिक विद्या है अतः इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है, मानव जाति से संबंधित होने के कारण मानवीय विद्या है, यह तर्कसंगत विद्या है अ तःइसमें तथ्य और निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं, यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अतः यह शिक्षाप्रद विद्या है| सामान्य रूप में इतिहास राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास का ही बोध होता है किंतु वास्तविकता यह है कि कोई भी वस्तु नहीं जिसका संबंध इतिहास से ना हो| इस तरह साहित्य भी इतिहास से जुड़ा हुआ है|

साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं और माननीय क्रियाकलापों के स्थान पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते हैं| वैसे देखा जाए तो साहित्यिक रचनाएं भी मानवीय

क्रियाकलापों से भिन्न नहीं हैं अपितु वह विशेष वर्ग के मनुष्यों की विशिष्ट क्रियाओं की सूचक हैं| उनके इतिहास को समझने के लिए रचनाकारों और उनसे संबंधित स्थितियों-परिस्थितियों और परंपराओं को समझना आवश्यक है|जैसे प्रारंभ में राजनीतिक इतिहास में राजाओं के जीवन चरित्र और घटनाओं को संकलित कर देना पर्याप्त समझा जाता था, उसी प्रकार साहित्य के इतिहास में भी रचनाओं और रचनाकारों के स्थूल परिचय प्राप्त होते थे: किंतु जैसे-जैसे इतिहास के सामान्य दृष्टिकोण का विकास होता गया वैसे-वैसे साहित्य इतिहास के दृष्टिकोण में भी तदनुसार सूक्ष्मता व गंभीरता आती गई| अंग्रेजी साहित्य केविभिन्न इतिहासकारों द्वारा यह धारणा बहुत पहले प्रचलित हो चुकी थी कि किसी भी जाति के साहित्य का इतिहास उच्च जाति के सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण को ही प्रतिबिंबित करता है या साहित्य की प्रवृतियां संबंधित समाज के व्यक्तियों की सूचक होती हैं, फिर भी इस धारणा को एक सुव्यवस्थित सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय फ्रेंच विद्वान तेन को जाता है जिन्होंने अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में प्रतिपादित किया कि साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों के मूल में मुख्यतः तीन प्रकार के तत्व सक्रिय रहते हैं जाति, वातावरण और क्षण-विशेष| तेन ने अपनी व्याख्या के द्वारा यह भी स्पष्ट किया कि किसी भी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उससे संबंधित जातीय परंपराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन-विश्लेषण आवश्यक है|साहित्य के इतिहास की व्यवस्था में जर्मन चिंतकों का भी कम योगदान नहीं है| उनके द्वारा कई सिद्धांत स्थापित हुए किंतु उन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'युग चेतना' का सिद्धांत है| साहित्य के इतिहास की व्याख्या के लिए विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न प्रयास होते रहे हैं जो हमें किसी निश्चित, स्पष्ट एवं समन्वित निष्कर्ष तक नहीं पहुंचाते फिर भी इनसे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि आज साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण केवल साहित्य तक सीमित ना रह कर उसकी गतिविधियों, शैलीगत प्रक्रियाओं के स्पष्टीकरण के लिए और उससे संबंधित राष्ट्रीय परंपराओं, सामाजिक वातावरण, आर्थिक परिस्थितियों एवं साहित्यकारों की वैयक्तिक प्रवृत्तियों का विवेचन- विश्लेषण आवश्यक है| मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि साहित्य की विकास प्रक्रिया के अध्ययन के लिए उससे संबंधित पांच तत्वों पर विचार किया जाना चाहिए- सर्जन शक्ति ,परंपरा, वातावरण, द्वंद और संतुलन|

1.2.2 साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्ष :

यदि हिंदी साहित्य पर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी साहित्य का इतिहास अत्यंत विस्तृत एवं प्राचीन है| सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ हरदेव बाहरी के शब्दों में- 'हिंदी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरंभ होता है यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिंदी है| इस भाषा का दुर्भाग्य रहा कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है| कभी वैदिक, कभी संस्कृत, कभी प्राकृत, कभी अपभ्रंश और अब हिंदी|' सामान्यतः प्राकृत की अंतिम अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है| उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं आठवीं शताब्दी से ही पद्य रचना प्रारंभ हो गई थी| साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएं मिलती हैं वह दोहा रूप में हैं, उनके विषय धर्म, नीति, उपदेश आदि हैं| राजाओं पर आश्रित कवि और चारण नीति, श्रंगार आदि के वर्णन से अपनी साहित्य रुचि का परिचय दिया करते थे| यह रचना परंपरा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश में कई वर्षों तक चलती रही| पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की भाषा का प्रयोग निरंतर बढ़ता गया| इस भाषा को विद्यापति ने देसी भाषा कहा है| हिंदी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारंभ हुआ यह कहना मुश्किल है किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रारंभ में हिंदी शब्द का प्रयोग विदेशी मुसलमानों ने किया था| इस शब्द से उनका तात्पर्य भारतीय भाषा का था|

साहित्य के इतिहास लेखन के विविध पक्ष देखे जा सकते हैं| इतिहास चाहे समाज का हो या साहित्य का, उसके लेखन के समय कई प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है| लेखक के लिए ऐतिहासिक बोध का होना आवश्यक है तो इतिहासकार को आधारभूत तथ्यों का संकलन वर्गीकरण-विवेचन करते हुए तत्कालीन युग के परिप्रेक्ष्य में उनका मूल्यांकन करना पड़ता है| इस प्रकार साहित्य इतिहास लेखन का कार्य एक वैज्ञानिक शोध के समान है जिसमें सामग्री संकलन, वर्गीकरण-विश्लेषण और संश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाओं का सहारा लेना पड़ता है, जिससे साहित्य इतिहास लेखन कार्य अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत और प्रामाणिक बन सके| इसके लिए --**सामग्री संकलन, काल विभाजन एवं नामकरण ,मूल्यांकन** आदि प्रमुख पक्षों को आवश्यक माना गया है| किसी भी साहित्य लेखक को सबसे पहले विभिन्न शिलालेखों, अभिलेखों, पत्र-पत्रिकाओं से सामग्री का संकलन करना पड़ता है| रचना एवं रचनाकारों का परिचय उनके संबंध में किए गए शोध, ग्रंथसूची, साहित्य कोश आदि से तथ्य लिए जाते हैं| प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों से युगीन परिस्थितियों और आंदोलनों की जानकारी ली जाती है| प्राचीन साहित्य की पांडुलिपियों, लोकगीत, मुहावरे, लोकोक्तियां, लोक कथाओं से भी सामग्री प्राप्त हो जाती है| इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री का इतिहास लेखक प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर क्रमबद्ध संयोजन करता है|

साहित्य के इतिहास लेखक को सामग्री संकलन के बाद पूरे इतिहास का **काल विभाजन और नामकरण** करना पड़ता है| साहित्य की विभिन्न धाराओं का अध्ययन करने के लिए साहित्य में अंतर्निहित चेतना, परंपराएं, विभिन्न प्रवृतियां आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना पड़ता है| इस प्रकार का विभाजन करने के पश्चात प्रतिनिधि रचनाकार, रचना, प्रवृत्ति तथा विशिष्ट घटना या आंदोलन के आधार पर उस काल का नामकरण किया जाता है|

केवल तथ्यों का संकलन मात्र साहित्य का इतिहास नहीं है बल्कि प्राप्त **तथ्यों का विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन** करने का काम साहित्येतिहासकार बखूबी निभाता है| उसको साहित्य की आलोचना भी करनी पड़ती है| नए-पुराने मूल्यों में आए परिवर्तन, नवीन तथ्यों का अन्वेषण और युगीन चेतना को वर्तमान से जोड़कर पुनर्मूल्यांकन करना पड़ता है|

1.2.3 साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियां :

साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियां इस प्रकार हैं- **वर्णानुक्रम पद्धति, कालानुक्रम पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति, विधेयवादी पद्धति|**

वर्णानुक्रम पद्धति साहित्य इतिहास लेखन की सर्वाधिक दोषपूर्ण और प्राचीन पद्धति है| इस पद्धति में कवियों और लेखकों का परिचय उनके नाम के वर्णानुक्रमानुसार किया जाता है|जैसे कबीर, केशवदास, कुंवर नारायण आदि| गार्सा द तासी व शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथों में इसी पद्धति का प्रयोग किया है | इस प्रणाली पर आधारित ग्रंथों को साहित्येतिहास की अपेक्षा साहित्यकार कोश कहना अधिक उपयुक्त है| कोश ग्रंथों के लिए यह प्रणाली उपयुक्त है|

कालानुक्रम पद्धति- इस पद्धति पर लिखे गए ग्रंथों को साहित्येतिहास कहने की अपेक्षा कविवृत्त संग्रह कहना उपयुक्त होगा| इसमें कवियों का विवरण जन्मतिथि के आधार पर दिया जाता है| मिश्रबंधुओं ने इस पद्धति का प्रयोग किया है और जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' इतिहास ग्रंथ इसी पद्धति को अपनाकर लिखा है|

वैज्ञानिक पद्धति- इस पद्धति में तथ्यों का संग्रहण करके उनका विश्लेषण किया जाता है और निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है| किसी भी इतिहासकार ने इस पद्धति का प्रयोग नहीं किया है|साहित्येतिहास लेखन की अपेक्षा कोड लेखन के लिए यह पद्धति उपयुक्त है| गणपति चंद्र गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' इसी पद्धति को आधार बनाकर लिखा है|

विधेयवादी पद्धति- साहित्य इतिहास लेखन की सर्वाधिक उपयुक्त विधि यही है| इसके जन्मदाता 'तेन' माने जाते हैं| इस पद्धति में साहित्य के इतिहास की प्रवृत्तियों का अध्ययन युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में किया जाता है| आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्य इतिहास लेखन में इसी पद्धति का प्रयोग किया है, इसी कारण उनके इतिहास ग्रंथ को सच्चे अर्थों में हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ कहा जाता है| शुक्ल जी मानते हैं कि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की संचित चित्रवृति का बिंब होता है! तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ- साथ साहित्य का परिवर्तन साहित्येतिहास कहलाता है| इसके साथ ही एक पद्धति और दिखाई देती है- **समाजवादी पद्धति**|यह पद्धति कार्ल मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित आधारित है, हालांकि इस पद्धति का प्रयोग हिंदी साहित्य इतिहास लेखन में किसी ने नहीं किया है फिर भी हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसका पक्ष लिया था| इस पद्धति ने समाज को दो भागों में बांट दिया शोषक और शोषित|

1.3 हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा :

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन परंपरा में सबसे पहला नाम फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी का आता है जिन्होंने हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास नाम से फ्रेंच भाषा में हिंदी कवियों के बारे में लिखा|| इसके पश्चात श्री शिव सिंह सेंगर ने अपनी पुस्तक शिवसिंह सरोज में 1000 कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है| सन 1913 में मिश्र बंधुओं ने अपने इतिहास ग्रंथ 'मिश्रबंधु विनोद' में 5000 कवियों का विवरण प्रस्तुत किया है| सन 1929 में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित इतिहास प्रकाश में आया|

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन की परंपरा को साहित्य इतिहास लेखन की परंपरा भी कहा जा सकता है| इतिहास लेखन की परंपरा को अनौपचारिक और औपचारिक दो रूपों में बांटा गया है| अनौपचारिक लेखन में भक्तमाल, कविमाला, कालिदास हजारा आदि ग्रंथ आते हैं| इसी प्रकार औपचारिक इतिहास लेखन की एक लंबी परंपरा हैऔर आचार्य रामचंद्र शुक्ल का साहित्य इतिहास लेखन में आना इस परंपरा के लिए एक बदलाव की ओर संकेत करता है|

डॉ रामकुमार वर्मा कृत 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में भक्तिकाल की धाराओं के कठिन नामों को सरल बनाया गया है साथ ही ज्ञानाश्रयी धारा को संत काव्य कहा और प्रेममार्गी धारा को प्रेम काव्य कहा| यह 750- 1750 ईस्वी तक का इतिहास है| इन्होंने वीरगाथा काल के स्थान पर एक नया नाम संधिकाल एवं चारण काल दिया| इन्होंने हिंदी का प्रथम कवि 'स्वयंभू' को माना है| गणपति चंद्र गुप्त ने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में वैज्ञानिक पद्धति को अपनाया है| इन्होंने शुक्ल जी की कई मान्यताओं का खंडन किया और विशेषकर सूफी काव्य को मसनवी काव्य कहने का खंडन किया है|डॉ नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ है| संपादित होने के कारण इसमें इतिहास बोध की समस्या बनी हुई है क्योंकि विभिन्न लेखकों की इतिहास दृष्टियां अलग-अलग हैं किंतु तब भी यह प्रयास अवश्य दिखता है कि यथासंभव एक ही दृष्टिकोण का पालन किया जाए| आचार्य शुक्ल के पश्चात जितने भी इतिहास लिखे गए वे या तो शुक्ल जी के समर्थन में हैं या विरोध में| कोई भी उनके इतिहास से मुक्त नहीं है, इसलिए डॉ बच्चन सिंह ने अपने इतिहास को 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' कहा |इन्होंने काल विभाजन तथा नामकरण में काफी

परिवर्तन किया है| आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल पर अपने विचार देते हुए कहते हैं कि- आदिकाल नाम भ्रामक है इससे बाबा आदम के जमाने का बोध होता है' इसीलिए उन्होंने इसे अपभ्रंश काल कहा इनके अनुसार भक्ति काल को मध्यकाल नहीं कहा जाना चाहिए क्योंकि यह जकड़ी हुई मनोवृति का परिचायक है| इसी प्रकार रीतिकाल को उत्तर मध्यकाल कहना इन्हें गणितीय खेल लगता है| डॉ रामविलास शर्मा का साहित्येतिहास लेखन है| यह एक ऐसे मार्क्सवादी चिंतक और इतिहासकार हैं जिन्होंने ना सिर्फ साहित्य के इतिहास पर अपितु देश के आर्थिक, राजनैतिक इतिहास पर गंभीर लेखन किया है| इन्होंने भारतेंदु युग, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, निराला की साहित्य साधना आदि हिंदी साहित्य के इतिहास के कई पक्षों का विश्लेषण किया है| इनका इतिहास बोध समाजवादी यथार्थवाद से प्रेरित है, जिसमें यह माना जाता है कि कोई भी साहित्यिक या सामाजिक घटनामूल अर्थव्यवस्था के ढांचे से निर्धारित होती है| इसके अतिरिक्त वही साहित्य प्रामाणिक है जो समाज में विद्यमान शोषण और दमन की वास्तविकताओं को उभारता है| उनके अनुसार भक्तिकाल में कबीर व तुलसी जैसे कवि गहरे इतिहास बोध से संपन्न हैं क्योंकि उन्होंने अपने समय की सामंती व्यवस्थाओं का डटकर मुकाबला किया| इस दृष्टि से उनका निबंध 'तुलसी साहित्य में सामंत विरोधी मूल्य' अत्यंत प्रामाणिक है| उन्होंने हिंदी व अन्य आर्य भाषाओं के इतिहास पर भी गहराई से विचार किया है और मध्यकालीन दौर में हिंदी जातीयता के निर्माण की ऐतिहासिक स्थितियों को सविस्तार समझाया है| साहित्येतिहास के क्षेत्र में रामविलास शर्मा की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा 'हिंदी जाति' की है| उनका यह मानना है कि किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखने के लिए उस भाषिक समाज के गठन का स्वरूप जानना जरूरी है| वह साहित्य का संबंध जातीय अस्मिता से जोड़ते हैं| उन्होंने हिंदी साहित्य में आरंभ से ही दो धाराएं लक्षित कीं- एक रीतिवादी धारा दूसरा लोकजागरणवादी धारा| डॉ रामविलास शर्मा ने भक्ति काव्य को लोक जागरण का काव्य माना है| शर्मा जी लोक जागरण की संपूर्ण परंपरा को अपने इस इतिहास लेखन में उपस्थित करते हैं| विद्यापति से इस परंपरा को लक्षित करते हुए अमीर खुसरो, भक्त कवियों, रहीम, सेनापति, भूषण, गिरधर कविराय, घनानंद, भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचंद, निराला, केदारनाथ अग्रवाल जैसे रचनाकारों को सम्मिलित करते हैं| भारतेंदु युग के नवजागरण की चेतना के संबंध में वह मानते हैं कि -'यह नई परिस्थितियों में पुराने लोक जागरण का विकास है|'डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' बड़े संक्षिप्त कलेवर में लिखते हैं जो नए पाठक में आधारभूत समझ पैदा करने में सक्षम है| 'हिंदी साहित्य का वृहद इतिहास' नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संपादित हुआ| यह एक व्यापक परियोजना है जिसमें 16 खंडों में हिंदी साहित्य का विस्तृत इतिहास लिखा गया| इसमें उर्दू साहित्य को हिंदी साहित्य का भाग माना गया है| इस तरह इतिहास लेखन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो आज भी विकासमान है|

1.4 हिंदी साहित्य का आरंभ :

आदिकाल हिंदी साहित्य का आरंभिक काल है| इस काल का साहित्येतिहास भाषा और साहित्य चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है| भाषा की दृष्टि से आदिकाल में उस भाषा का जन्म हुआ जो आज राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित है| साहित्यिक दृष्टि से यह युग अत्यंत समृद्ध होते हुए भक्ति, वीरता, लोक जीवन, श्रंगार आदि इस युग के प्रमुख काव्य विषय हैं| इसलिए हिंदी में प्रबंध और मुक्तक के साथ साथ गद्य साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ |अधिकांश साहित्य ने लंबे समय तक परवर्ती हिंदी साहित्य को प्रभावित किया| मनुष्य भाषा के माध्यम से बोधगम्यता के आधार पर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है और आनंदानुभूति को व्यापक रूप देता है| इसी कलात्मक अभिव्यक्ति को साहित्य कहते हैं| इस रूप में मानवीय जीवन साहित्य में चित्रित होता है और आने वाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित सामग्री के रूप में लाभकारी सिद्ध होता है| साहित्य की अनेक विधाएं मनुष्य की भावनात्मक मनोदशाओं को और सामाजिक जीवन को अभिव्यक्त करती हैं| एक ओर समसामयिक परिस्थितियों

के अनुसार साहित्य में विविध विषयों का चित्रण मिलता है तो दूसरी ओर साहित्य में चित्रित विचार समाज को उन्नत करने में सहायक सिद्ध होते हैं| आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को समाज का दर्पण और ज्ञान राशि का संचित कोष कहा है और आचार्य श्यामसुंदर दास ने माना है कि- 'सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है, उसके संचित भंडार का नाम साहित्य है|' इसी प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल मानते हैं कि- 'प्रत्येक देश का साहित्य, वहां की जनता की चित्र वृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है|

1.5 आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि :

साहित्य मानव समाज की भावनात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति होता है| उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश या पृष्ठभूमि का बहुत महत्व है| किसी भी काल के साहित्य के इतिहास को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक से समझना अत्यंत आवश्यक होता है, इस दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानना उचित है|

राजनैतिक स्थिति- आदिकाल का समय 769 ईस्वी से 1418 ईस्वी तक है| इस काल की राजनीतिक स्थिति वर्धन साम्राज्य के पतन से आरंभ होती है| अंतिम वर्धन सम्राट हर्षवर्धन के समय से ही उत्तरी भारत पर आक्रमण प्रारंभ हो गए थे| हर्षवर्धन ने दृढ़ता से उनका सामना किया किंतु आक्रमणों की आंधी को वह रोक नहीं पाया| उसकी समस्त शक्ति उस प्रतिरोध में ही समाप्त हो गई| हर्षवर्धन की मृत्यु ने भारत के संगठित सत्ता के खंड खंड हो जाने की सूचना दी तथा वे राजपूत राज्य सामने आए जो निरंतर युद्धों की आग में जलते जलते अंततः विशाल इस्लाम साम्राज्य की नींव में समा गए| आठवीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति हिंदू सत्ता के धीरे-धीरे क्षय होने तथा इस्लाम सत्ता के धीरे-धीरे उदय होने की करुण कहानी है, इसी ने उस मनःस्थिति को जन्म दिया जिसमें कोई भी एक प्रवृत्ति साहित्य में प्रधान ना हो सकी| यवन शक्तियों के आक्रमण का प्रभाव मुख्यतः पश्चिम और मध्य प्रदेश पर ही पड़ा था| इन्हीं क्षेत्रों की जनता युद्धों और अत्याचारों से विशेषतः आक्रांत हुई थी| यही वह क्षेत्र था, जहां हिंदी भाषा का विकास हो रहा था| अतः इस काल का समस्त हिंदी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभाव की मनःस्थितियों का प्रतिफलन है| आदिकाल के इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था| राजा आपस में लड़ रहे थे| एक कवि आध्यात्मिक जीवन की बातें करता था तो दूसरा मरते मरते भी जीवन का सुख भोग लेना चाहता था, एक तीसरा भी कवि था जो तलवार के गीत गाकर गौरव के साथ जीना चाहता था| यही इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों की एक विचित्र देन है जिसके फलस्वरूप स्त्री- भोग, हठयोग से लेकर आध्यात्मिक पलायन और उपदेशों तक का साहित्य एक ओर लिखा गया तो दूसरी ओर ईश्वर की लोक कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने तथा लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना के मूल में सन्निहित हुई| सम्राट हर्षवर्धन का दरबार संस्कृत के कवियों और पंडितों से भरा रहता था और भाषा के कवियों को उस समय कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था किंतु राजपूतों की राजधानियां स्थापित हो जाने के बाद लोक भाषा का आदर बढ़ने लगा| जो कवि धार्मिक भावना से अनुप्राणित थे वही किसी की परवाह किए बिना काव्य साधना करते थे और जो कभी राजा के आश्रय में होते थे उन्हें अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचना करनी पड़ती थी| धर्म और राजाश्रय से मुक्त रहकर कविता करने वाले कवियों की प्रतिभा के विकास के लिए उचित वातावरण नहीं था|

धार्मिक स्थिति- ईसा की छठी शताब्दी तक देश का धार्मिक वातावरण शांत था विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में परस्पर मेलजोल बढ़ने लगा था वैदिक यज्ञ, मूर्ति पूजा तथा जैन और बौद्ध उपासना पद्धतियां एक साथ चल रही थी किंतु सातवीं शताब्दी के साथ देश की धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन प्रारंभ हुआ इस समय दक्षिण भारत से आलवार उत्तर भारत की ओर एक आंदोलन लेकर आए 642 ईसवी में जब ह्वेनसांग ने दक्षिण भारत की यात्रा की तो वहां बौद्ध धर्म के पतन की झलक पाकर वह बहुत दुखी हुआ उत्तर भारत में भी इस समय यही प्रभाव आ रहा था वैष्णो मत इस समय अधिक प्रतिष्ठित नहीं था अतः जनता में या तो जैन मत सम्मान पा रहा था या शैव मत| 12वीं शताब्दी तक वैष्णो आंदोलन तीव्र होने लगा था और शैव आंदोलन ने भी नया रूप ले लिया था| समस्त उत्तर भारत में धीरे धीरे शैवमत बौद्ध एवं स्मार्त प्रभावों को स्वीकार करता हुआ नया रूप लेने लगा था| डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- ' हिमालय के पाद देश में प्रचलित नाथ पूजा बौद्ध धर्म को प्रभावित कर के वज्रयान शाखा के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी|' इस समय जनता हिंदू साधुओं की जितनी प्रतिष्ठा करती थी उतनी ही प्रतिष्ठा बौद्ध सन्यासियों की भी थी| व्यभिचार, आडंबर, अर्थ, लोभ आदि जिन दोषों का बौद्ध विहारों में प्राधान्य हो गया था, उन्हीं से हिंदू मंदिर भी ग्रस्त हो चले थे| पुजारी एवं महंत धर्म के सच्चे स्वरूप से अपरिचित होते जा रहे थे तथा अधिकार एवं धन का प्रलोभन प्रबल हो चला था| देशव्यापी धार्मिक अशांति के इस काल में एक बाहरी धर्म इस्लाम का प्रवेश भी कम महत्व नहीं रखता था| अशिक्षित जनता के सामने अनेक धार्मिक राहें बनती जा रही थी किंतु राह दिखाने वाले लोग ईमानदार नहीं थे| बौद्ध सन्यासी यौगिक चमत्कारों का प्रभाव दिखा रहे थे| वैदिक एवं पौराणिक मतों के समर्थक खंडन-मंडन की भूल भुलैया में पड़े थे| जैन धर्म पौराणिक आख्यानों को नए ढंग से गढ़कर जनता की आशाओं पर नया प्रभाव जमा रहा था| वैष्णव की धार्मिक कथाएं जैन कथाएं बनती जा रही थीं जो नास्तिकता-आस्तिकता का आवरण ओढ़ कर जनता में भ्रान्त वातावरण बना रही थीं | कुल मिलाकर विभिन्न धर्मों के मूल रूप लुप्त हो चले थे| एक दार्शनिक लहर दक्षिण भारत से अवश्य आ रही थी जिसके प्रचारक शंकराचार्य थे| उनके अद्वैतवाद का प्रचार उत्तर भारत को एक नई प्राणवायु दे रहा था| कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियां अत्यंत विषम तथा असंतुलित थीं| जनमानस में गहरा असंतोष, क्षोभ तथा भ्रम छाया हुआ था| कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं श्रंगार का साहित्य लिखा|

सामाजिक पृष्ठभूमि- राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का देश की सामाजिक परिस्थितियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा था| जनता शासन तथा धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी| वह ईश्वर की ओर दौड़ती थी तो सर्वत्र भ्रम और असहायता की स्थिति मिलती थी| जाति-पांति के बंधन कड़े होते जा रहे थे| उच्च वर्ग के लोग भोग करने के लिए थे तथा निर्धन वर्ग के लोग मानों श्रम करने के लिए ही पैदा हुए थे| नारी केवल भोग्या मात्र रह गई थी| सामान्य जन के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी| सती प्रथा भी इस समय के समाज का एक भयंकर अभिशाप थी| अनेक प्रकार के अंधविश्वास बढ़ते जा रहे थे| साधू-सन्यासियों के श्रापों और वरदानों की ओर लोगों की दृष्टि रहने लगी थी| जीवन यापन के साधन दुर्लभ होते जा रहे थे| भांति-भांति के पूजा-पाठ, तंत्र-मंत्र तथा जप-तप करके भी लोग दुर्भिक्ष, युद्ध तथा महामारिओं के संकट से उबर नहीं पाते थे| सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में जीने वाली जनता भाव के स्तर पर निरंतर ऐसे विचारों की प्यासी रहती थी जो उसे सांत्वना दे कर मानसिक शांति की ओर बढ़ा सके| हिंदी के कवियों को जनता की इस स्थिति के अनुसार काव्य रचना की सामग्री जुटानी पड़ी|

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा साहित्यिक वातावरण- हिंदी साहित्य का आदिकाल उस समय आरंभ हुआ जब भारतीय संस्कृति उत्कर्ष के चरम शिखर पर आरूढ़ हो चुकी थी और जब उसने भक्तिकाल को अपना दायित्व

सौंपा उस समय भारत में मुस्लिम संस्कृति के स्वर्ण शिखर स्थापित होने लगे थे| इस प्रकार आदिकाल को दो संस्कृतियों के

संक्रमण एवं ह्रास-विकास की गाथा कहा जा सकता है| हर्षवर्धन के विशाल साम्राज्य ने हिंदू धर्म और संस्कृति को राष्ट्रव्यापी एकता का आधार दिया था| इस आधार पर छोटे-मोटे भेदभाव अस्त हो गए थे तथा स्वाधीनता एवं देश भक्ति के भाव दृढ़ होने लगे थे| संगीत, चित्र, मूर्ति, स्थापत्य आदि कलाओं में जातीय गौरव की भावना अभिव्यक्त हो रही थी| महमूद गजनवी भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता पर मुग्ध हुआ था| शास्त्रों एवं कलाओं के अनुशीलन में तल्लीन तत्कालीन जनजीवन उसके लिए ईर्ष्या का विषय बन गया था किंतु देश के भाग्य की विडंबना यह रही कि शताब्दियों से श्रेष्ठता की साधना में तल्लीन वह जीवन महमूद जैसे आक्रांताओं की विजयाकांक्षा का कोप भाजन बन गया और शताब्दियों तक उस कोप से मुक्ति ना मिली| दो संस्कृतियाँ एक दूसरे के सामने मानसिक तनाव की स्थिति में खड़ी एक दूसरे को शंका की दृष्टि से देखती रहीं| आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है वह परंपरागत गौरव से विकसित तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है| तत्कालीन जीवन के हर स्वरूप पर इस संस्कृति के व्यापक छाप मिलती है| उत्सव, मेले, परिधान, आहार, मनोरंजन, विवाह आदि सब में मुस्लिम रंग मिल गया था|चित्रकला, मूर्तिकला आदि मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा था| इस तरह आदिकाल की भारतीय संस्कृति उत्कर्ष प्राप्त निजी परंपरा के ह्रास तथा इस्लाम के सम्मिश्रण की एक ऐसी कहानी है जिसमें कलात्मक चेतना का मुक्त और जीवंत स्वरूप बहुत कम मिलता है| इस काल में साहित्य रचना की दो धाराएं चल रही थीं| प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थी जो एक परंपरा के साथ विकसित होती जा रही थी| दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था| तीसरी धारा हिंदी भाषा में लिखे जाने वाले साहित्य की थी|| नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक कन्नौज एवं कश्मीर संस्कृत साहित्य रचना के केंद्र रहे| हिंदी ही इस काल की एक ऐसी भाषा थी जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में मुखर हो रही थी|

इकाई : 2 मध्यकालीन हिंदी साहित्य :

2.0 परिचय :

एक ओर जहाँ हम देखते हैं कि भारत में हिंदी का मात्रभाषा के रूप में प्रयोग करने वालों की संख्या कम नहीं है, वहीं दूसरी ओर यह भी देखते हैं कि बहुत से लोग ऐसे भी हैं जो हिंदी की बोलियों और उप बोलियों का प्रयोग अपनी मातृभाषा के रूप में करते हैं| इतिहास में जिसे मध्य काल के नाम से जाना जाता है उसे हिंदी साहित्य के इतिहास में उसे दो भागों में बांटते हुए पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल अर्थात भक्तिकाल और रीतिकाल के नाम से अभिहित किया गया है| मध्यकाल में हिंदी का स्वरूप स्पष्ट हो गया था और उसकी प्रमुख बोलियां विकसित हो गई थीं|हिंदी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरुप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक प्रचलित भाषाएं भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गईं|भारतीय धर्म साधना के इतिहास में भक्ति मार्ग का विशेष स्थान है|भक्ति भावना आर्यों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमशः श्रद्धा उपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान के ऐश्वर्य में भाग

लेना जैसे व्यापक भाव में परिणत हुई|वैसे भक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख 'श्वेताश्वेतर' उपनिषद में मिलता है| भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का श्रेठ युग माना जाता है| भारतीय धर्म साधना के इतिहास में भक्ति मार्ग का विशेष स्थान है| वैदिक युग में यज्ञ अथवा कर्मकांड के माध्यम से धर्म अनुष्ठान हुआ करते थे| विनय अथवा प्रार्थना भी उनके दैनिक जीवन की उल्लासमयी अभिव्यक्ति थी| उनका ध्यान मुख्य रूप से ऐहिक सुखों की प्राप्ति पर केंद्रित था| श्रद्धा से विहीन यज्ञ का कोई अर्थ ना था| इसी से श्रद्धामूलक भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ और आगे चलकर बहुदेववाद भी एकदेववाद में परिणत हो चला| वैदिक भक्ति परंपरा के समानांतर दक्षिण भारत में द्रविण संस्कृतगर्भित पृथक भक्ति परंपरा का सूत्रपात हो चुका था| इसमें शरणागत और समर्पण की भावना प्रबल रूप में पाई जाती थी| भक्ति भावना के संदर्भ में पांचरात्र का योगदान कम उल्लेखनीय नहीं है| उनका मुख्य उद्देश्य भक्ति मार्ग के साधनों का निरूपण करना रहा है| अपनी प्रदेयता के कारण इस काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण काल कहा जाता है|भक्तिकालीन साहित्य ने अपनी अमृतवाणी से जनमानस को सिंचित कर उनके ज्ञान का दीप जलाया और पतनोंन्मुखी समाज में अपनी दिव्य वाणी से नवीन चेतना का संचार किया तथा मानवीय मूल्यों की स्थापना की|

2.1 इकाई के उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप--

- . भक्तिकालीन साहित्यिक पृष्ठभूमि को जान और समझ सकेंगे|
- . आप यह जान सकेंगे कि भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग क्यों कहा गया?
- . भक्ति आंदोलन के विकास और व्याप्ति को इस इकाई के द्वारा समझ सकेंगे|
- . निर्गुण धारा की प्रवृत्तियां जान सकेंगे और इस धारा के अंतर्गत आने वाली ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेममार्गी शाखा के बारे में समझ सकेंगे|
- . सगुण धारा की विशेषताएं समझ सकेंगे और इसके अंतर्गत आने वाली कृष्णभक्ति काव्यधारा और रामभक्ति काव्यधारा को जान पाएंगे|
- . भक्तिकालीन गद्य साहित्य के बारे में जाना जा सकता है|
- . भक्ति साहित्य की काव्य भाषा और भक्ति कालीन साहित्य में प्रयुक्त शब्दावली के बारे में जान और समझ सकेंगे|
- . भक्ति काल के प्रमुख संतों और कवियों के काव्यों से परिचय पाकर उनसे संबंधित रचनाओं की व्याख्या कर सकेंगे|
- . भक्ति शब्द का अर्थ बता सकेंगे|

2.2 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि, नामकरण एवं सीमांकन :

समय बड़ी तेजी से परिवर्तित होता है और इसी के साथ बदलता है समाज| बदलते समाज में रहने वाले मनुष्यों की सोच में बड़ी तेजी से परिवर्तन होता है जिसका प्रभाव इस समय लिखे जाने वाले साहित्य पर पड़ता है|युगीन वातावरण राजनीति, संस्कृति, साहित्य, समाज और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है| भाषा साहित्य के निर्माण में युगीन परिवेश का विशेष योगदान हुआ करता है| संत कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, जायसी आदि इसी युग की देन हैं, जिन्होंने धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं को छंदों में बांधकर समाज के सम्मुख वैचारिक क्रांति को जन्म दिया|साहित्य, समाज और इतिहास के बिना अधूरा होता है इसीलिए आजकल साहित्येतिहास विषय से संबंधित शोध कार्यों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है|भक्ति काल के साहित्य के परिवेश को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जाननी और समझनी आवश्यक है| भारत के राजनैतिक क्षेत्र में सन 1343-1643 तक की अवधि में दो प्रमुख मुस्लिम वंशों- पठान वंश और मुगल वंश का आधिपत्य बना रहा| इनमें लोदी, सैयद और तुगलक वंशों के शासक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं|

यदि **भक्ति साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि** पर नजर डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल का आरंभ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक के राज्य काल में हुआ| उत्तर से दक्षिण तक के अपने राज्य विस्तार को ध्यान में रखकर उसने दिल्ली की अपेक्षा देवगिरी को अपनी राजधानी बनाने का प्रयत्न किया और उसका नाम दौलताबाद रखना चाहा, इस प्रयास में दिल्ली प्रदेश एकदम उजाड़ हो गया| उसने तांबे के सिक्के चलाए और कई बार सुदूर चीन पर आक्रमण की योजना बनाई| अपनी कुछ विशेषताओं के कारण वह कवि, विद्या व्यसनी तथा पक्षपात रहित सुलतान बन सका| उसके यहां विद्वानों को संरक्षण भी मिलता रहता था| हिंदू प्रजा के प्रति वह उदारवादी दृष्टि रखता था और आगे चलकर उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक में धार्मिक सहिष्णुता का अभाव था, इसीलिए वह हिंदुओं के प्रति पक्षपात रहित नहीं रह सका| धीरे धीरे अवसर पाकर कई सूबेदारों ने विद्रोह कर दिया और दिल्ली सल्तनत में बिखराव उत्पन्न हो गया| उसका उत्तराधिकारी जूनाशाह था जिसका उल्लेख मुल्ला दाऊद ने चंदायन में किया है| परवर्ती सुल्तानों में से कोई भी इस बिगड़ती हुई स्थितियों को संभाल नहीं सका और सुल्तान महमूदशाह की मृत्यु के पश्चात 1412 ईसवी में तुगलक वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया| लोदी वंश में इब्राहिम लोदी (1487-1526) को शक्तिशाली मुगलों का सामना करना पड़ा और धीरे-धीरे लोदी वंश की सल्तनत समाप्त हो गई| लोदी वंश के शासन काल में केंद्रीय शासन कमजोर हो चुका था और मालवा, गुजरात, जौनपुर, बंगाल आदि स्वतंत्र सूबे बनने लग गए थे| राजा भोज के समय मालवा की प्रसिद्धि बढ़ गई थी किंतु 1310 ईस्वी में अलाउद्दीन खिलजी ने इसे अपने शासन में ले लिया तथा 1401 ईस्वी में मोहम्मद गोरी के वंशज दिलावर खान ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर धार नगरी को अपनी राजधानी बना लिया| उसके बाद उसके पुत्र ने अपनी राजधानी मांडू में स्थापित की| 1562 ईस्वी में सम्राट अकबर ने इसे अपने राज्य में मिला लिया|

गुजरात अपनी समृद्धि और सोमनाथ मंदिर के लिए हमेशा प्रसिद्ध रहा है| महमूद गजनवी ने इसी से आकृष्ट होकर 1025 ई में अफगानिस्तान से आकर यहां लूटपाट मचा दी| बड़े लंबे समय तक यहां किसी का भी स्थाई शासन नहीं बन सका और बाद में बहादुरशाह जफर एक अच्छे शासक के रूप में प्रसिद्ध हुए, किंतु बाद में

गुजरात को भी अकबर ने अपने साम्राज्य में मिला लिया| फिरोजशाह तुगलक ने अपने चचेरे भाई जूना शाह के स्मारक स्वरूप गोमती नदी के किनारे जौनपुर को बसाया था| जौनपुर में कई सूफी हुए जो बाद में आश्रयविहीन होकर मालवा से बंगाल तक फैल गए| मैथिल कोकिल कवि विद्यापति ने कीर्तिलता में जौनपुर का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है| बंगाल दिल्ली से दूर था और कई मुस्लिम शासक आक्रमण करके बंगाल में नहीं टिक सके| इस प्रदेश में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य फैलाने के अवसर कम ही आ पाते थे| हुसैन शाही शासकों के पश्चात बंगाल में कोई टिक नहीं पाया| मुगलों पर विजय प्राप्त करने के बाद शेरशाह ने इस प्रदेश पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया था| ऐतिहासिक दृष्टि से बहमनी राज्य का विशेष महत्व है| हसन गंगू ने 'जफर खां' पदवी ग्रहण कर राज्य की गद्दी संभाली और अब्दुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह कहला कर दौलताबाद का सुल्तान बन बैठा| उसने अपनी राजधानी गुलबर्गा में स्थापित की उसके उत्तराधिकारियों में फिरोजशाह सबसे योग्य प्रमाणित हुआ उसने साहित्य और विद्वानों को संरक्षण दिया बाद में उसके भाई अहमद शाह ने बीदर नगर की नींव डालकर 'वली' की उपाधि ग्रहण की, कालांतर 1518 ई में यह राज्य बिखर कर नष्ट हो गया और पांच स्वतंत्र मुस्लिम राज्यों की स्थापना हो गई अंत में यह सभी मुगल साम्राज्य में मिल गए|

सूर वंश की स्थापना शेरशाह सूरी ने की| उसके पिता सासाराम के जागीरदार थे| एक बार शेर मारने के कारण उसे 'शेरखान' की पदवी मिली| उसने बाबर के संपर्क में आकर बंगाल जीतने में उनकी मदद की और उनकी मृत्यु हो जाने पर गौड़ देश को अपने अधीन कर लिया तथा पठानों की सहायता से हुमायूं को हराकर 'शेरशाह' की उपाधि ग्रहण कर ली| शेरशाह की मृत्यु के पश्चात धीरे-धीरे वहां की हालत बिगड़ती गई जिसका फायदा हुमायूं ने उठाया और वह बादशाह बन बैठा| तैमूर लंग की पांचवी पीढ़ी में उत्पन्न मुहम्मद बाबर वास्तव में तुर्क वंशी था मुगल नहीं| संयोगवश वह उन सम्राटों का पूर्व पुरुष बन गया जिन्हें मुगल कहकर स्मरण किया जाता है| उसके पिता रूसी तुर्किस्तान के एक छोटे से राज्य के स्वामी थे| उनकी मृत्यु के बाद बाबर 12 वर्ष की उम्र में वहां का उत्तराधिकारी| बना धीरे-धीरे वह भारत की ओर उन्मुख हुआ और काबुल को जीतकर समरकंद को अपने अधीन कर लिया| छोटे-छोटे आक्रमणों के द्वारा वह भारत में स्थिर होता गया वह अपनी राज्यव्यवस्था सुधारना चाहता था किंतु शहजादे हुमायूं की बीमारी के कारण ऐसा ना हो सका और वह फिर से ना उठ पाया| उसकी मृत्यु के तीसरे दिन 1530 ईस्वी में हुमायूँ बादशाह बन गया| बाबर ने बाबरनामा लिख कर अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है| यह केवल आत्मचरित्र नहीं है बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों और वातावरण का परिचायक ग्रंथ भी है| हुमायूं को अपने शासनकाल में अनेक विरोधी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा| 1566 ईस्वी में पुस्तकालय की सीढ़ियों से उतरते हुए अचानक उसका पांव फिसल गया और सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई| उसके पश्चात उसके पुत्र जलालुद्दीन अकबर के नाम ख़ुतबा पढ़ दिया गया| अकबर का बचपन बैरम खां के संरक्षण में व्यतीत हुआ| धीरे-धीरे उसने शासन की बागडोर स्वयं संभाल ली| बिहार, बंगाल और गुजरात के विद्रोह को दबाकर उसने कश्मीर पर भी अपना झंडा फहरा दिया, साथ ही चित्तौड़, कलिंजर तथा गोंडवाना को सफल नहीं होने दिया| फतेहपुर सीकरी के किले का निर्माण इसी समय हुआ| देश को समृद्ध बनाने के साथ-साथ वह सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नयन के लिए भी सदैव प्रयत्नशील रहा| उसके प्रमुख दरबारी नवरत्न के रूप में प्रसिद्ध थे जिसमें फैजी,राजा टोडरमल, राजा

मानसिंह, अब्दुर्रहीम खानखाना, मुल्ल्ला दो प्याजा, अबुलफ़जल, बीरबल, तानसेन, रहीम आदि के नाम लिए जाते हैं| शिक्षित ना होकर भी वह उदार हृदय और व्यवहार कुशल था| उसने कला, संगीत, साहित्य और संस्कृति को यथासंभव संरक्षण दिया| इसका शासन काल 1605 ई तक रहा| अकबर की परंपरा में जहांगीर, शाहजहां, औरंगजेब आते हैं| जहांगीर ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा किंतु सफल नहीं हो पाया| वह न्यायप्रिय शासक था और प्रजा के दुख सुख में हमेशा साथ रहता था| सन1627 ई में उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र शाहजहां गद्दी पर बैठा| धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य क्षीण होने लगा था| औरंगजेब ने अपने भाई दारा शिकोह तथा अन्य भाइयों का अंत करवा दिया और अपने पिता को बंदी बना लिया| औरंगजेब कला और साहित्य प्रेमी था, साथ ही शूरवीर और कार्य में कुशल भी कम नहीं था|इस प्रकार भारत के राजनीतिक क्षेत्र में सन1343 से 1643ई तक के समय में दो प्रमुख मुस्लिम वंशों पठान वंश और मुगल वंश का आधिपत्य बना रहा| मुगल बादशाहों ने पूर्ववर्ती सुल्तानों की शासकीय कमियों से सजग होकर उनसे अपना बचाव किया तथा शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया| मुगलों में अकबर का राज्य काल सबसे सर्वोपरि माना जाता है| उसके शासनकाल में नागरिकों को सेना की मनसबदारी पाने तक की छूट मिली थी| अकबर के शासनकाल में ही टकसालों का सुधार हुआ और तांबे, चांदी और सोने के सिक्कों का प्रचलन हुआ|

भक्ति साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि- भारतीय समाज जिन तत्वों से बना है उनमें वर्ण और जाति का विशेष स्थान है| समय-समय पर इस देश में न जाने कितने लोग आए और वे अपने अपने धर्म- विश्वासों, रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहार लेकर आए, जिसका परिणाम संघर्ष के रूप में हुआ किंतु समय बदलने के साथ सामंजस्य और समन्वय की भावना स्थापित होने लगी| इतिहास के लिए यह कोई नई बात नहीं थी| मुसलमानों ने व्यवहारिक संबंधों के भेद को प्रकट करने के लिए यहां के निवासियों को हिंदू कहा| इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजय नगर के राजाओं के 15वीं शताब्दी वाले शिलालेख में उपलब्ध है| इस्लाम भातृ भाव का संदेश लेकर चला| उसका द्वार कुछ शर्तों पर सबके लिए खुला था| इस समय धर्म परिवर्तन के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं और इसकी चिंता तत्कालीन हिंदुओं को सताने लगी थी जिसकी रक्षा के निमित्त वे स्मृतियों और टीकाओं का सहारा लेने लगे थे| कई बार तो विधर्मी तथा विजातीय शासकों द्वारा हिंदू प्रजा के प्रति क्रूर दुर्व्यवहार तक हो जाया करते थे जिससे आतंकित होकर उन्हें अपने को मुस्लिम प्रजा से भिन्न मानने को बाध्य होना पड़ता था| हिंदू समाज में वर्णाश्रम धर्म का पालन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता था जिसके फलस्वरूप जातियों- उपजातियों की संख्या में वृद्धि हो गई थी| वर्ण व्यवस्था में आस्था न रखने वालों में भी किसी न किसी प्रकार का आपसी भेदभाव बना हुआ था| इन दिनों दास प्रथा प्रचलित थी| हिंदू कन्याओं को संपन्न मुसलमान अधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लेते थे| कुलीन नारियों का अपहरण कर अमीर अपना मनोरंजन किया करते थे| समाज में ऐसे हिंदू राजाओं का भी अभाव नहीं था जो मुस्लिम महिलाओं विशेषकर सैयद स्त्रियों को दासी रूप में अपने यहां लाकर नृत्य गीत की शिक्षा दिलवाया करते थे| समाज में बहु विवाह या पुनर्विवाह की प्रथाएं प्रचलित थीं| सती प्रथा का भी विवरण मिलता है| ओडरिक नामक पादरी ने दक्षिण भारत में प्रचलित सती प्रथा का उल्लेख किया है| स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर और सम्मान प्राप्त नहीं था| पर्दा प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी फिर भी स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी और कला साहित्य के निर्माण में

स्त्रियों का योगदान रहा करता था| छुआछूत के नियम इतने कठोर थे कि शूद्र जातियों तक में परस्पर भेदभाव बरता जाने लगा था| भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था हिंदुओं से अधिक अच्छी नहीं थी| उस समय सुल्तान का पद सर्वोपरि माना जाता था और उसके बाद उलेमा तथा उमरा का स्थान आता था| शेख अपने पांडित्य के लिए प्रसिद्ध थे| शिया और सुन्नी दो संप्रदाय थे| खेतिहर, मजदूर, व्यापारी और नौकरी पेशा मुसलमानों में भी परस्पर भेदभाव की कमी नहीं थी| मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिंदू स्त्रियों से अलग नहीं थी| बहुविवाह प्रथा के कारण हरमों में इनकी बड़ी दुर्गति होती थी| इस समय तक भारत में ईसाईयों के समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, इसी प्रकार पारसी तथा यहूदी अपनी-अपनी सीमाओं में ही सीमित रहे| इस समय का भारतीय समाज सुविधा और असुविधा संपन्न था| भूमि की पैदावार प्रचुर मात्रा में थी| लुटेरे नहीं होते थे| राजधानी भव्य होती थी| तत्कालीन साधु समाज पर पाखंड की काली छाया मंडराने लगी थी| गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली में इन स्थितियों का स्पष्ट चित्रण किया है|

भक्तिकाल की सांस्कृतिक चेतना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिंतन धारा के माध्यम से हुई है| भारतीय जीवन में समय-समय पर विदेशी और विजातीय तत्वों के आते रहने के कारण परस्पर संघात होते रहे हैं परंतु इन्हीं से होकर ऐसी जीवनी शक्ति का संचार भी होता रहा है कि भारतीय समाज टूटते टूटते भी उबरता चला गया| मौर्य साम्राज्य के बिखराव के बाद ब्राह्मणवाद का उदय नए तेज और ओज के साथ हुआ|पुण्यमित्र के शासनकाल में समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए सूत्रों- स्मृतियों की व्याख्या तथा रचना होने लगी और गौ-ब्राह्मणों की सुरक्षा की व्यवस्था की गई| परवर्ती गुप्त काल में वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ और देवी-देवताओं तथा देवालयों की स्थापना द्वारा लुप्तप्राय धर्म व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया| मध्यकालीन हिंदू समाज के दो पक्ष हमारे सामने आते हैं एक वह जो शास्त्रों का समर्थक है और दूसरा वह जो परंपरागत विश्वासों तथा मान्यताओं का पक्षधर रहा है, यह दूसरा पक्ष ही पौराणिक पक्ष है परंतु हम देखते हैं कि दोनों पक्षों में परस्पर अंतरावलंबन है| भारत में आध्यात्मिक उपलब्धि को जीवन का परिष्कार माना गया जिसके कारण धर्मानुभूति और दार्शनिक चिंतन का अन्योन्याश्रय संबंध जुड़ गया|साधु-सन्यासियों का सम्मान और स्वर्ग-नर्क ,श्राद्ध- पिंड दान आदि युग की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं| इन्हीं की दूरी पर हिंदू जीवन चक्र चलता रहा और इस्लाम के भारत प्रवेश के पूर्व तक अविकृत रूप में प्रचलित रहा| शंकराचार्य की तरह कुमारिल भट्ट ने भी भारतीय चिंतन धारा को काफी प्रभावित किया है| परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं मतों की व्याख्या के रूप में विशिष्ट अद्वैतवाद, द्वैतवाद सुधारों की स्थापना की| इन सभी में ईश्वर को निरपेक्ष मान कर उस की भक्ति का प्रतिपादन किया गया है परंतु आत्मा-परमात्मा, मोक्ष-पुनर्जन्म आदि के सिद्धांत प्रायः ज्यों के त्यों रह गए|ईश्वर और मनुष्य के बीच संबंध स्थापित करने का एक माध्यम मार्ग धर्म है| जाति, कुल ,देश काल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह करना धर्म है| धर्माचार और नैतिकता समाजपरक हैं तथा धर्मसाधना व्यक्तिनिष्ठ| साध्य और साधन का एकीकरण साधना के द्वारा होता है| साधना का विकास रुचि, शिक्षा और संस्कार के अनुसार कई रूपों में होता है| शक्ति संपन्न समर्थ व्यक्तियों की मरणोत्तरकालीन आत्माओं को अलौकिकता प्रदान कर उन्हें कल्याणप्रद शक्तियों से सम्बद्ध कर देने की परंपरा अत्यंत प्राचीन है| कुल देवता और ग्राम देवता इन्हीं की उपज हैं,

जिनके प्रतीक पिंड तथा पदार्थ बने| मध्यकाल में हिंदू समाज की बृहत्तर इकाई गांव थे और लघुतम इकाई परिवार थे जो जीविका के सम्मिलित साधनों से युक्त थे| इस काल में धर्म साधनों की बाढ़ सी आ गई थी| धर्माचार के नाम पर अनाचार, मिथ्याचार और व्यभिचार बढ़ने लग गया जिसके फलस्वरूप ज्ञान चर्चा की आड़ में पाखंड को प्रश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई| बह्याडम्बर और कर्मकांड आदि के बाह्य विधान के प्रति व्यंग्य किए जाने लगे| मध्यकालीन धर्म साधना में प्रायः सभी पूर्ववर्ती प्रमुख धर्म साधनाएं किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं| इसी प्रकार हरिहर पूजन में भी शैव-वैष्णव धारा का संगम परिलक्षित होता है| भक्ति आंदोलन का विकास इसी पृष्ठभूमि में हुआ| भक्ति आंदोलन की लोकप्रियता के कारण कला क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ| वास्तु कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं| मध्यकालीन साहित्य प्रायः पद्य में है और यहां साहित्य 'काव्य' का पर्याय है|इस तरह भक्ति साहित्य किसी एक क्षणिक भावावेश की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है बल्कि यह ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है|

नामकरण एवं सीमांकन- भक्ति काल हिंदी साहित्य का श्रेष्ठ युग है, जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्णकाल', श्यामसुंदर दास ने 'स्वर्णयुग', आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'भक्तिकाल' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोकजागरण काल' कहा है| डॉ बच्चन सिंह ने भक्ति काल को भक्ति आंदोलन शीर्षक से प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि- 'भक्ति आंदोलन इतना व्यापक, गहरा, लोकोन्मुखी और प्रभावशाली था कि इसे देखकर किसी का आश्चर्यचकित हो जाना स्वाभाविक नहीं है'| संपूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएं इसी युग में प्राप्त होती हैं| भक्ति दक्षिण ऊपजी लाए रामानंद|दक्षिण में आलवार नाम से कई प्रसिद्ध भक्त हुए हैं और उन के पश्चात दक्षिण में आचार्यों की एक लंबी परंपरा चली| इसी परंपरा में रामानंद आते हैं जिनका व्यक्तित्व असाधारण था और उन्होंने ही भक्ति के क्षेत्र में ऊंच-नीच का भेद तोड़ दिया| सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को उन्होंने शिष्य बनाया|

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने समय तक के साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर भक्ति काल का निर्धारण 1318 से 1643 ईस्वी तक किया है| ना तो आदिकाल में परिगणित सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य में विद्यमान भक्ति तत्वों के आधार पर इस अवधि का विस्तार उचित है और ना रीतिकाल में स्फुट रूप में रचित भक्तिपरक छंदों के आधार पर काल विस्तार तर्कसंगत है| शुक्ल जी की स्थापना में हेरफेर की गुंजाइश तब तक नहीं दिखाई देती जब तक ऐसी सामग्री क्रमबद्ध रूप में कम या अधिक मात्रा में उपलब्ध ना हो जाए, फिर भी भक्ति साहित्य में उन वैष्णवेतर रचनाओं को सम्मिलित करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए जो विषय वस्तु की दृष्टि से भी उक्त सीमा के अनुकूल पड़ती हैं| भक्ति काव्य की परंपरा परवर्ती काल तक प्रवाहित रही है किंतु उसमें जितनी मात्रा अनुकरण की रहती है उतनी भावना के नवोन्मेष की नहीं, इसलिए जब तक ऐसी सामग्री उपलब्ध ना हो कि पुनः विचार की आवश्यकता पड़े तब तक सामान्यतया शुक्ल जी की स्थापना को चलते रहने देना चाहिए: फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए भक्तिकाल को चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक मानना उचित होगा क्योंकि आदिकाल की रचना प्रवृतियां चौदहवीं शती के मध्य तक पर्याप्त बलवती रही थीं|

2.3 भक्ति आंदोलन का विकास और व्याप्ति :

बच्चन सिंह ने भक्ति काल को भक्ति आंदोलन शीर्षक से प्रस्तुत करते हुए लिखा है- 'भक्ति आंदोलन इतना व्यापक, गहरा, लोकोन्मुखी और प्रभावशाली था कि इसे देखकर किसी का आश्चर्यचकित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है| यह पहला भारतीय नवजागरण था जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक फैला हुआ था| भक्ति आंदोलन के साथ देश के विभिन्न अंचलों में जातीय संगठन की शुरुआत भी हो जाती है| संस्कृत और अपभ्रंश का पल्ला छोड़कर भक्तों ने देशभाषा में लिखना आरंभ कर दिया| सबसे पहले आलवार भक्तों के माध्यम से तमिल जाति बनी| 12वीं-13 शती में कन्नड़ जाति का उदय हुआ|बांगला, गुजराती और हिंदी जाति का उदय लगभग एक साथ हुआ| 15वीं शताब्दी में इससे कुछ पहले मराठी जाति अस्तित्व में आ गई थी| हिंदी प्रदेश में कबीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संस्कृत को 'कूपजल' और भाषा को 'बहता नीर' कहा| तुलसीदास ने जोखिम उठाकर भी संस्कृत को छोड़कर अवधी भाषा में लिखना आरंभ किया|प्रायदीपीय राज्यों में प्रादेशिक निष्ठा पहले से ही थी| बौद्ध, जैन संप्रदायों का पतन हो चुका था, लेकिन उनके शोषण का स्थान ब्राह्मण धर्म ने ले रखा था| शूद्रों की दशा अत्यंत शोचनीय थी| व्यापार की दृष्टि से छोटे छोटे व्यवसाई थे| तमिलों का भक्ति आंदोलन ब्राह्मण धर्म की प्रभुसत्ता के विरुद्ध हुआ| निम्न वर्ण ने भक्ति का सहारा लिया जिसमें ईश्वर उसके दुख का साथी था| इस आंदोलन द्वारा जातिप्रथा को धक्का लगा और निम्न जातियों में आत्म गौरव का भाव जगा| वर्तमान दौर में बहुत से लोग परमात्मा को सगुण रूप में पूजते हैं और बहुत से निर्गुण रूप में| सगुण रूप में पूजने का सीधा अर्थ है कि हम परमात्मा को एक आकार के रूप में देखते हैं और अपनी सोच के हिसाब से परमात्मा को देखते हैं|भक्ति साहित्य ठोस तथा उर्वर धरातल की उपज है| विद्वानों ने भक्ति साहित्य दो वर्गों में विभक्त किया है- ज्ञान मार्गी और प्रेम मार्गी| यह विभाजन प्रवृति के आधार पर किया गया है| इसी प्रकार उपासना भेद का आश्रय लेकर भक्त विषयक सगुण और निर्गुण दो वर्गों की कल्पना की गई है, जहां निर्गुण में ब्रह्मानुभूति को स्थान दिया गया है वहीं सगुण भक्ति में लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया है|

2.3.1 निर्गुण काव्यधारा: संत काव्य, सूफी काव्य :

ज्ञान और भक्ति मार्ग के दो रूप है जो विरोधी ना होकर परस्पर संबद्ध है| ज्ञान की अनुभूति ही भक्ति है| ज्ञान मार्ग पर चलने वाले आचार्यों ने भी ज्ञान की अनुभूति पक्ष पर बल दिया है| बिना अनुभूत का ज्ञान मात्र वाक्य ज्ञान है, जिससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता| भक्ति को विद्या माया मानने वाले तथा ज्ञान मार्ग को ही एकमात्र शक्ति स्वीकार करने वाले आचार्य शंकराचार्य ने भी ज्ञान की अनुभूति पर बल दिया है| 'अहं ब्रह्मास्मि' का ज्ञान मात्र निष्फल ही रहता है,सिद्धि तो तब होती है जब यह ज्ञान अनुभव में बदल जाता है|

संत काव्यधारा के दार्शनिक- सांस्कृतिक आधार हैं जिनमें प्रमुख हैं- उपनिषद, शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन, नाथ पंथ, इस्लाम धर्म और सूफी दर्शन| उपनिषदों में जीव, जगत और माया संबंधी विचारधारा के साथ ही ब्रह्म के स्वरूप वर्णन से संबंधित उपमानों और अप्रस्तुत योजनाओं को संत कवियों द्वारा प्रायः उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है| आचार्य शंकर और निर्गुण संत कवि दोनों इस विषय में एकमत हैं कि जीव विशुद्ध ब्रह्म तत्व है और जो भिन्नता दिखाई देती है वह माया के कारण होती है| संत साहित्य में आत्मा की अखंडता, एकरसता, अद्वैतरूपता एवं अकथनीयता का प्रतिपादन भी शंकर के सिद्धांत के अनुरूप है| संत काव्य और संत दर्शन पर नाथ पंथ का प्रचुर प्रभाव है| संतसाधना में योग-प्रक्रिया की जो प्रधानता है उसका मूल स्रोत नाथपंथी साधना पद्धति ही है| तंत्र साधना का संतमत पर प्रभाव दिखाई देता है| भले ही कबीर कहते हैं- 'तंत्र ना जानू, मंत्र न जानू, जानू सुंदर काया'| कबीर के अनंतर उनकी परंपरा में आने वाले विकसित संप्रदायों में तंत्र साधना का स्वरूप प्रमुख रहा है| मलूक पंथ और निरंजनी संप्रदाय में इस प्रभाव को सहज रूप में ही देखा जा सकता है| इस्लाम के संपर्क और प्रभाव के कारण संतों की विचारधारा एकेश्वरवाद से प्रभावित हुई| मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद के बहिष्कार का मूल आधार इस्लाम धर्म में ही है| इस्लाम में सामाजिक असमानता को दूर करने की चेष्टा भी दिखाई देती है| सत्य यह है कि एकेश्वरवाद उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी इसीलिए कबीर जैसे संत कवियों ने हिंदू मुसलमान दोनों को एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया जिसके परिणामस्वरूप जनता को बहुदेव की उपासना के अभिशाप से छुटकारा मिला| संत काव्य में दांपत्य प्रतीकों की उपलब्धि सूफी दर्शन के प्रभाव का ही परिणाम है| सूफी मत ने संतों की विचारधारा को ही नहीं बल्कि अभिव्यंजना शैली को भी प्रभावित किया| सूफी मत ने देशव्यापी धार्मिक कटुता को समाप्त कर प्रेम और माधुर्य की भावना का प्रसार किया| यह कार्य ज्ञान मार्गी संतो के सहयोग से ही संभव हुआ| उस युग में ज्ञान मार्गी संत कवियों ने धार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्र की रूढ़ियों की उपेक्षा और आलोचना की| उन्होंने निगम, आगम, पुराण आदि को महत्वहीन प्रमाणित किया| संत कवियों ने वैदिक साहित्य,वैदिक परंपराओं की जो आलोचना की है वह सब बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है| मध्ययुग में निर्गुण भक्ति के मुख्य संस्थापक स्वामी रामानंद ने साधना एवं भक्ति के द्वार शूद्रों तथा निम्न वर्गों के लिए भी खोल दिए| संत संप्रदाय विश्व संप्रदाय है और उसका धर्म विश्व धर्म है, इस धर्म का मूलाधार ह्रदय की पवित्रता है| संत संप्रदाय में गुरु को ब्रह्म से भी महान माना गया है, जैसे कबीर कहते हैं-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पांय|
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दियो बताय||

भक्ति कालीन संत कवियों में कबीर, दादू दयाल, गुरु नानक, रविदास, सुंदरदास, मलूकदास,लालदास, हरिदास, धर्मदास आदि संतो ने भक्ति भावना के प्रसार और भक्ति काव्य की रचना में ना केवल उल्लेखनीय योगदान दिया अपितु इनकी शिष्य परंपरा में बाद में भी निर्गुण भक्ति काव्य की रचना होती रही|

कबीर दास ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जनजीवन का नायकत्व किया|

कबीर सिकंदर लोदी के समकालीन थे उनका समय 1398- 1518 तक का रहा| वह रामानंद के शिष्य थे| अक्षर ब्रह्म के परम साधक कबीरदास सामान्य अक्षर ज्ञान से परे थे| उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है- 'मसि कागज छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ'|

उन्होंने किसी ग्रंथ को लिपिबद्ध नहीं किया| उनकी रचनाएं उनकी प्रतिभा की रश्मियां हैं| कबीर की कविताओं में छंद, अलंकार, शब्द शक्तियां गौण हैं और संदेश की प्रवृत्ति प्रधान है| इन संदेशों में आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा, पथ-प्रदर्शन तथा संवेदना की भावना निहित है| कबीर भावना की अनुभूति से युक्त उत्कृष्ट रहस्यवादी जीवन का संवेदनशील स्पर्श करने वाले मर्यादा के रक्षक कवि थे| उनकी विशेषताओं के कारण उन्हें समाज सुधारक, पथ प्रदर्शक के रूप में माना जाता है| उनकी अभिव्यंजना शैली प्रभावपूर्ण है\ उनके कार्यों में भावना तत्व की प्रचुरता है| वह कोरे बुद्धिवादी नहीं हैं| उनके काव्यों में रसात्मकता भी देखी जाती है|

मध्ययुगीन साधकों में रैदास अथवा रविदास का विशेष स्थान है| इनका जन्म काशी में हुआ था| निम्न वर्ग में उत्पन्न हो कर भी उत्तम जीवन शैली, उत्कृष्ट साधना पद्धति के कारण वे आज भी भारतीय धर्म साधना में आदर के साथ स्मरण किए जाते हैं| कबीर की भांति उनका बल भी कला पक्ष की अपेक्षा प्रतिपाद्य पक्ष पर अधिक रहा| अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने सरल व्यावहारिक ब्रज भाषा को अपनाया| नानक देव नाथ पंथ के प्रवर्तक रहे| उनके द्वारा स्थापित संप्रदाय ने उन्हीं के जीवन काल में एक व्यापक संगठन का रूप धारण कर लिया था| राजनीतिक परिस्थितियों के कारण उनका संप्रदाय और भी व्यापक, सुदृढ़ और सुव्यवस्थित होता गया| नानक देव समन्वय और उदार प्रवृति के व्यक्ति थे| उनमें अद्भुत संगठन शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विद्यमान थी| नानक के अनुसार ईश्वर कृपा से तत्व दर्शन हो जाता है किंतु उस अनुभव की अभिव्यक्ति सदैव नहीं हो पाती| नानक ने अनेक पदों की रचना की जो 'ग्रंथ साहिब' में संकलित हैं| उनके पद राग-रागिनियों में रचित हैं| उन्होंने छंदों का प्रयोग नहीं किया है|

हरिदास निरंजनी, निरंजनी संप्रदाय के कवि थे जिनका मूल स्रोत साधना है| इस संप्रदाय को नाथ पंथ और संतमत की मध्यवर्ती कड़ी कहा जा सकता है| हरिदास की भाषा सरल ब्रज भाषा है| संत सींगा का जन्म मध्य भारत की रियासत वडवानी के खजूर गांव में एक ग्वाल परिवार में हुआ था| यह एक उच्च कोटि के विचारक रहे और इनके अनुसार परम तत्व की खोज में मंदिर या मस्जिद जाने की आवश्यकता नहीं है वह तो हृदय में ही विद्यमान होता है| सींगा की निर्गुण ब्रह्म संबंधी धारणा संत कबीर की ब्रह्म सम्बन्धी कल्पना से बहुत कुछ साम्य रखती है| इन की काव्य भाषा निमाड़ी है| इनके द्वारा लिखी 11 रचनाओं का जिक्र है| दादू पंथ के प्रवर्तक संत दादू दयाल माने जाते हैं जो धर्म सुधारक, समाज सुधारक और रहस्यवादी कवि थे| मध्यकालीन साधकों में उनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था| ऐसा माना जाता है कि उन्होंने बीस सहस्त्र पदों और साखियों की रचना की| उनकी विचारधारा कबीर से प्रभावित है| निर्गुण भक्त कवि होने पर भी उन्होंने सगुण स्वरूप को मान्यता दी है और भक्ति को सहज भाव से स्वीकार किया है| वह किसी भी मत या वाद में नहीं पड़े| उनकी काव्य भाषा ब्रज है| मलूकदास का समय अकबर के समकालीन माना जाता है| उन्होंने कई ग्रंथों की रचना की| उन्होंने अवधी और ब्रज भाषा में रचनाएं की हैं| संत दादूदयाल के शिष्यों में सुंदरदास

का नाम आता है जो बड़े ही प्रतिभा संपन्न कवि और साधक थे| अन्य संत कवियों में संत धर्मदास, रज्जब, शेख फरीद, बेनी पीपा, सदना आदि हैं| कबीर वाणी को 'बीजक' में संकलित करने का श्रेय संत धर्मदास को जाता है| इस प्रकार संत काव्य देश की राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप रचित भावनात्मक एवं अनुभूतिप्रवण जन काव्य है| इनका प्रेरणास्रोत सामान्य मानव का हित साधन है| उन्होंने समाज कल्याण मार्ग का अपनाया| संत काव्य में आध्यात्मिक अनुभूतियों और सामाजिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है| संत संवेदनशील थे, उनका मानस स्वच्छ और उदार था|

सूफी काव्यधारा- इसे प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा भी कहते हैं| आख्यान का सामान्य अर्थ होता है कथन, निवेदन या प्रतिवचन| आधुनिक विद्वान आख्यान को इतिहास मूलक कथानक के रूप में स्वीकार करते हैं| हिंदी के पूर्व वैदिक एवं पौराणिक प्रेमाख्यान मिलते हैं| यह परंपरा प्राचीन है और यह अपने बीज रूप में प्राचीन वैदिक साहित्य तक के अंतर्गत पाए गए हैं| महाभारत में प्रेमाख्यानों की बहुलता है| फारसी के सूफी प्रेमाख्यान मसनवी परंपरा में लिखे गए हैं| हिंदी सूफी प्रेमाख्यानों की रचना मुख्य रूप से मुसलमान कवियों द्वारा की गई है| हिंदी साहित्य के मध्य काल के आरंभ से पूर्व ही प्रेममार्गी काव्य परंपरा का प्रवर्तन हो चुका था| इस परंपरा के काव्य ग्रंथों में प्रेम तत्व की प्रमुखता है किंतु इनका प्रेम तत्व परंपरागत भारतीय श्रंगार भावना से थोड़ा भिन्न है| प्रेमाख्यान कवियों की मूल चेतना को समझने के लिए सर्वप्रथम इनके प्रेरणास्रोत एवं प्रयोजन पर विचार किया जाना चाहिए| इस परंपरा के काव्य प्रबंधात्मक शैली में रचित हैं, यही कारण है कि इनमें कथात्मक तत्वों की प्रमुखता है|

प्रेमाख्यान परंपरा की हिंदी की पहली रचना 1370 ईस्वी में रचित कवि असायित की रचना 'हंसावली' को माना जा सकता है| इस परंपरा का दूसरा काव्य मुल्ला दाऊद द्वारा रचित 'चांदायन' है| दामोदर कवि ने 1459 ई में ' लखम सेन पद्मावती कथा' की रचना की ईश्वर दास ने 'सत्यवती कथा', कुतुबन ने 'मृगावती',मलिक मुहम्मद जायसी ने 1540 ई में ' पद्मावत' की रचना की| यह एक महाकाव्य है जिसमें लौकिकता के धरातल पर अलौकिकता की ओर संकेत किया गया है| कविता एवं भाव व्यंजना की दृष्टि से पद्मावत अत्यंत उच्च कोटि का काव्य है| कवि मंझन द्वारा 'मधुमालती' का सृजन किया गया| कल्लोल कवि ने 'ढोला मारू रा दूहा', उसमान द्वारा 'चित्रावली',शेख नबी द्वारा 'ज्ञानदीप' आदि लिखे गए| इसके अतिरिक्त जान कवि के प्रेमाख्यान काव्य, नल दमयंती संबंधी प्रेमाख्यान काव्य भी लिखे गए| हिंदी की यही एक ऐसी काव्य परंपरा है जिसका प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश की कथा काव्य परंपरा से सीधा संबंध स्थापित होता है| मध्यकालीन हिंदी साहित्य की यह सबसे दीर्घ एवं निधित्व युक्त परंपरा है| इस काल के अनेक सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न शास्त्रीय तत्वों जैसे दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, ज्योतिष, वैद्यक आदि का समन्वय किया है|

2.3.2 सगुण काव्यधारा: कृष्णभक्ति काव्यधारा ,रामभक्ति काव्यधारा :

प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और उदार दृष्टि इस भक्ति का आधार है| भक्ति का संबंध हृदय से है और समस्त मानव जाति के हृदय में भक्ति भाव जागृत करना इसका लक्ष्य रहा है| वैष्णव धर्म के आचार्यों ने भक्ति रस की स्थापना में सर्वाधिक योगदान दिया है| भारतीय साहित्य में सौंदर्य और माधुर्य का मणिकांचन सहयोग इसी वैष्णो भक्ति साहित्य में दृष्टिगोचर होता है| इस साहित्य को भारतीय वांग्मय की एक श्रेष्ठ निधि के रूप में माना जा सकता है| सगुण भक्ति काव्यधारा में ईश्वर को सगुण साकार माना गया है| इसमें अवतारवाद में विश्वास, ईश्वर की लीलाओं का गायन, भक्ति का विशिष्ट रूप आदि विशेषताओं के रूप में दिखाई देता है|
सगुण काव्यधारा में **कृष्णभक्ति शाखा** का सर्वाधिक प्रचार हुआ है| मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान कृष्ण का स्थान सर्वोपरि है| कृष्ण भारतीय पुराण और इतिहास दोनों में सर्वाधिक वर्णित भी हुए हैं| महाभारत युद्ध के सूत्रधार के रूप में उनका बुद्धि कौशल, पराक्रम और तेजस्वी व्यक्तित्व सर्वत्र व्याप्त है| कृष्ण वैदिक कालीन देवता हैं और महाभारत काल तक उनका निरंतर विकास हुआ है| वैदिक ऋचाओं में कृष्ण के अनेक रूप दिखाई देते हैं| महाभारत, गीता और पुराणों में कृष्ण वर्णित हैं| संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों में भी कृष्ण का उल्लेख मिलता है| विद्यापति ने भी कृष्ण काव्य लिखा है| मध्यकालीन भक्ति संप्रदाय में कृष्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं| आचार्य बल्लभ ने कृष्ण को सत,चित और आनंद स्वरूप माना है| निंबार्क संप्रदाय में कृष्ण और राधा की उपासना का विधान है| राधावल्लभ संप्रदाय में राधा को प्रमुखता दी गई है|

विभिन्न संप्रदायों के अंतर्गत उच्च कोटि के आचार्य हुए हैं| वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के अंतर्गत सूरदास, नाभादास, कुंभनदास, छीतस्वामी ,गोविंद स्वामी, नंददास जैसे भक्त कवि हुए हैं|पुष्टि चार प्रकार की बताई गई है- मर्यादा पुष्टि, प्रवाह पुष्टि, पुष्टपुष्टि,शुद्ध पुष्टि| पुष्टिमार्ग की भक्ति रागानुगा भक्ति है| कृष्ण भक्ति काव्य में कृष्ण की लीलाओं को प्रमुखता दी गई है| वात्सल्य एवं श्रंगार के सर्वोत्तम भक्त कवि सूरदास के पदों का परवर्ती हिंदी साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है| इस शाखा के कवियों ने प्रायः मुक्तक काव्य ही लिखे हैं| भगवान श्री कृष्ण का बाल एवं किशोर रूप ही इन कवियों को आकर्षित कर पाया है| इनके काव्यों में माधुर्य की प्रधानता दिखाई देती है| प्रायः सभी कवि गायक थे इसलिए कविता और संगीत का अद्भुत सुंदर समन्वय इन कवियों की रचनाओं में मिलता है| गीतिकाव्य की जो परंपरा जयदेव और विद्यापति द्वारा पल्लवित हुई थी उसका चरम विकास इन कवियों द्वारा हुआ है| नर-नारी की साधारण प्रेम लीलाओं को राधा कृष्ण की अलौकिक प्रेम लीला द्वारा रंजित करके उन्होंने जनमानस को रसाप्लावित कर दिया| इस शाखा के प्रमुख कवियों में सूरदास, नंददास, हरिदास, हित हरिवंश, रसखान, रहीम, नरोत्तम दास, मीराबाई आदि हैं| कृष्ण काव्य धारा की प्रमुख विशेषताओं को देखें तो इन्होंने कृष्ण की लीलाओं का गान किया है, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की प्रधानता है, भगवान कृष्ण की उपासना माधुर्य एवं सख्य भाव से की गई है, गीतिकाव्य की मनोहारी छटा है और पदों में रचना हुई है| इस काव्य धारा में उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है| कृष्ण काव्य की भाषा ब्रज है और कोमल कांत पदावली का प्रयोग हुआ है, ईश्वर के प्रतिपादन के लिए भ्रमरगीत लिखने की परंपरा प्राप्त होती है, कृष्ण काव्य स्वतंत्र प्रेम प्रधान काव्य है और इसमें प्रेमलक्षणा भक्ति को अपनाया गया है| इन काव्यों में उपालंभ की प्रधानता है| सूर का

भ्रमरगीतसार इसका उत्कृष्ट उदाहरण है| इन काव्यों में ज्ञान और कर्म के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई है और आत्म चिंतन की अपेक्षा आत्मसमर्पण का महत्व है| इन काव्यों में प्रकृति चित्रण के साथ-साथ ग्राम्य प्रकृति के सौंदर्य के चित्र उपस्थित हैं|

रामभक्ति शाखा- जहाँ एक ओर कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत लीला पुरुषोत्तम का गान रहा है तो राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवियों ने मर्यादापुरुषोत्तम राम का ध्यान किया है और उन्हें ही अपना आराध्य माना है| यद्यपि राम काव्य का आधार संस्कृत साहित्य में उपलब्ध राम काव्य और नाटक रहे हैं फिर भी इस धारा का प्रवर्तन वैष्णव संप्रदाय के स्वामी रामानंद से स्वीकार किया जा सकता है| तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान, ईश्वरदास,केशवदास, सेनापति के साथ साथ अन्य राम भक्त कवियों में नरहरि बारहट, लालदास के नाम आते हैं| इनकी भक्ति में सेवक-सेव्य-भाव है| राम काव्य में ज्ञान, कर्म और भक्ति के अलग-अलग महत्व स्पष्ट करते हुए भक्ति को उत्कृष्ट बताया गया है| तुलसीदास ने भक्ति और ज्ञान में अभेध माना है, फिर भी वे ज्ञान को कठिन मार्ग और प्रेम को सरल तथा सहज मार्ग स्वीकार करते हैं| राम भक्ति साहित्य में राम के लोक रक्षक रूप की स्थापना हुई है|
तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम तथा आदर्शों के संस्थापक हैं| इस काव्य धारा में आदर्श पात्रों की सर्जना हुई है| तुलसी का 'मानस' समन्वय की विराट चेष्टा है| उनका सारा काव्य लोक और शास्त्र का समन्वय, ग्राहस्थ और वैराग्य का समन्वय,भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृत का समन्वय, निर्गुण और सगुण के समन्वय से परिपूर्ण है| इनके कार्यों में सामाजिक तत्वों की प्रधानता है| तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है| इनके काव्यों में अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग मिलता है| तुलसीदास के करीब 13 ग्रंथ मिलते हैं| विष्णुदास के दो ग्रंथ, ईश्वरदास के दो ग्रंथ, नाभादास के तीन ग्रंथ, अग्रदास के तीन ग्रंथ,ह्रदयराम के 3 ग्रंथ, पुराण चंद चौहान का एक ग्रंथ मिलता है| इस तरह भक्ति काल में काव्य की दो धाराएं प्रचलित हुईं- निर्गुण और सगुण| निर्गुण में ज्ञान मार्ग और प्रेममार्गी इसी प्रकार सगुण में कृष्ण काव्य और राम काव्य धारा आती हैं| मध्यकाल में रामानुज ने राम की उपासना को लोक में प्रचारित किया| स्वामी रामानंद ने भी राम के नाम को परम ब्रह्म का प्रतीक बताया| राम काव्य की लंबी परंपरा के बावजूद राम कथा को लोकप्रियता तुलसीदास के कारण ही मिली| उनकी रामचरितमानस हिंदू परिवारों में धार्मिक ग्रंथ की तरह पूज्य हो गई लेकिन तुलसीदास की भक्ति कृष्ण भक्त कवियों से कई अर्थों में भिन्न थी|

2.3.3 भक्तियेतर काव्य :

अन्य युगों की भांति भक्ति काल में भी भक्ति काव्य के साथ-साथ अन्य प्रकार की रचनाएं होती रहीं, तथापि प्रधानता भक्तिपरक रचनाओं की ही रही है|भक्ति काल वैचारिक समृद्धि और कला वैभव का काल है| यह काल काव्यात्मक उपलब्धि की दृष्टि से अपने श्रेष्ठतम रूप में जाना जाता है| भक्ति काल हिंदी साहित्य की उदारता, वैचारिक चेतना की चरम पराकाष्ठा है| इस कालखंड में विभिन्न वर्गों एवं संप्रदायों के कवियों ने

उत्कृष्ट रचना कर्म का परिचय दिया है| भक्तिकाल जीवन की व्यापक समरसता का अद्‌भुत प्रमाण है|राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के बीच भक्ति का काव्य उमड़ा जिसका प्रवाह राजाओं या शासकों के प्रोत्साहन पर अवलंबित नहीं था और इस प्रभाव काल के बीच अकबर जैसे योग्य शासक का प्रतिष्ठित होना आकस्मिक बात थी| उसी शांति सुख के परिणामस्वरुप जो साहित्य उत्पन्न हुआ वह दूसरे ढंग का था| अकबर ने देश की परंपरागत संस्कृति में पूरा योग दिया जिससे कला के क्षेत्र में फिर से उत्साह का संचार हुआ, इस बीच कुछ ऐसे रचनाकार भी हुए जिनकी कविताओं का दरबार में सम्मान होने लगा| अब्दुर्रहीम खानखाना ऐसे ही रचनाकार हैं|इस समय वीर,श्रंगार और नीति की कविताओं के आविर्भाव के लिए विस्तृत क्षेत्र खुल गए| मुक्तक रचनाओं के अतिरिक्त प्रबंध काव्य परंपरा ने भी जोर पकड़ा, अनेक आख्यानक काव्य भी इस काल में लिखे गए|छीहल की 'पंचसहेली',लालचदास- 'हरिचरित', 'भागवत दशम स्कंध भाषा', कृपाराम- 'हिततरंगिणी', हृदयराम- 'हनुमन्नाटक',नरोत्तमदास- 'सुदामाचरित्र', आलम- 'माधवानल कामकंदला',महाराज बीरबल की कोई पुस्तक नहीं मिलती बल्कि कई सौ कवित्तों का संग्रह है, गंग की भी कोई पुस्तक नहीं मिलती बल्कि पुराने संग्रह ग्रंथों में इनके बहुत से कवित्त मिलते हैं|कवि मनोहर- 'शतप्रश्नोत्तरी', बलभद्र मिश्र- 'नखशिख', जमाल के कुछ दोहे मिलते हैं, महाराज टोडरमल ने फुटकल कवित्त लिखे|इसके अतिरिक्त कादिर, मुबारक, बनारसीदास, सेनापति, पुहकर कवि, कवि सुंदर, लालचंद आदि ने भक्ति से इधर रचनाएं लिखीं|

2.4 भक्तिकाल का गद्य साहित्य :

हिंदी का प्राचीन गद्य भाषा,शैली, विषय, सांस्कृतिक अध्ययन आदि अनेक से महत्वपूर्ण है| वास्तव में यह आधुनिक गद्य की भूमिका है| आधुनिक गद्य की अनेक भाषाप्रवृत्तियों, विधाओं और शैलियों के पूर्व रूपों का दर्शन भारतेंदु पूर्व में होता है| आधुनिक युग के पूर्व मौलिक ललित गद्य का निर्माण कम हुआ था| हिंदी परिवार की भाषाओं में गद्य का उन्मेष कालक्रम से सर्वप्रथम राजस्थानी में प्राप्त होता है| भक्ति काल में अवधी के अतिरिक्त हिंदी की शेष सभी

विभाषाओं में गद्य निर्माण हुआ है| भक्ति काल के गद्य साहित्य में ब्रजभाषा गद्य, खड़ी बोली गद्य, दक्खिनी गद्य, राजस्थानी गद्य देखे जा सकते हैं| प्राचीन ब्रजभाषा गद्य प्राचीन खड़ी बोली गद्य की अपेक्षा अधिक विकसित और वैविध्य पूर्ण है| धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ अन्य विषयों का प्रतिपादन भी ब्रजभाषा गद्य में हुआ है| ब्रजभाषा गद्य साहित्य चार वर्गों में बांटा हुआ है- मौलिक, टीकात्मक, अनूदित और पद्य प्रधान ब्रजभाषा| ब्रजभाषा गद्य परंपरा में सर्वप्रथम गोरख पंथी ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है| इस समय की प्रसिद्ध ब्रजभाषा गद्य रचनाओं में ध्रुवदास का 'सिद्धांत विचार', नाभादास का 'अष्टयाम', बैकुंठमणि का 'अगहन महातम' आदि है| रीतिकाल से पूर्व खड़ी बोली गद्य रचनाओं को साहित्यिक और असाहित्यिक के रूपों में बांटा जा सकता है| उत्तर भारत में खड़ी बोली में निर्मित गद्य रचनाएं 17वीं शताब्दी से प्रामाणिक रूप में प्राप्त होती हैं| दक्खिनी की प्राचीनतम प्राप्त रचना गेसूदराज की 'मेराजुल आशिकीन' है, इसके अतिरिक्त दखिनी में विशाल मात्रा में गद्य साहित्य लिखा गया| राजस्थानी की विभाषाओं में केवल मारवाड़ी में समृद्ध गद्य परंपरा प्राप्त होती है| 'आराधना', 'बाल शिक्षा टीका', 'जगत

सुंदरी प्रयोगमाला' 'अतिचार' 'नवकार व्याख्यान टीका' आदि गद्य रचनाएं मिलती हैं| इस तरह भक्ति काल में साहित्य गद्य बहुत कम परिमाण में रचा गया| इस समय की ललित ग्रंथ रचनाओं की संख्या बहुत अधिक नहीं है| भक्ति काल के सामान्य गद्य का भी परिमाण विशाल नहीं है| भक्ति काल का खड़ी बोली गद्य प्रायः मिश्रित रूप है| यह ब्रजभाषा और पंजाबी तथा राजस्थानी से पर्याप्त रूप से प्रभावित है| गद्यात्मकता की दृष्टि से भक्ति काल का गद्य स्थूलतः द्विविध है|

2.5 भक्तिकालीन साहित्य और लोक जागरण :

लोकजीवन से जुड़ाव भक्ति साहित्य की विशेषता है| परम सत्ता जहां प्रकृति के बंधन से मुक्त है उसे निर्गुण और जहां बंधनयुक्त है उसे सगुण कहते हैं| जहां सीमा का बंधन है वही रूप है जहां सीमा नहीं है वह असीम है, जहां गुण है उसे सगुण और जहां गुण नहीं है उसे निर्गुण कहते हैं| परमात्मा का चित्र है विश्व| सगुण रूप में ईश्वर के साकार स्वरूप का नाम ही अवतार है| निर्गुण निराकार का ध्यान तो संभव नहीं है पर सगुण रूप में आकर वह इस संसार के कार्यों में फिर क्रम और व्यवस्था उत्पन्न करते हैं| भक्तिकालीन साहित्य में विश्व शांति और लोक कल्याण की भावना निहित है जब समाज में पाप, मिथ्या, अन्याय और दूषित वृत्तियों का बाहुल्य हो जाता है तब किसी न किसी रूप में पाप निवृत्ति के लिए भगवान का स्वरूप प्रकट होता है| वह दुराचार, छल कपट, धोखा, अन्याय,भय के स्वच्छ वातावरण को दूर कर मनुष्य के हृदय में विराजमान देवत्व की स्थापना करता है| आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति काल को लोक जागरण काल कहा है क्योंकि इस समय लिखा गया साहित्य लोक जागरण का आधार बना यद्यपि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप ग्रहण किया| इस देश में मुसलमानों के बस जाने के कारण ऐसे भक्ति मार्ग की आवश्यकता थी जो हिंदू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो, इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो| महाराष्ट्र के संत नामदेव ने चौदहवीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे| ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों ने आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए समाज सुधारक के रूप में कार्य किया| बाह्य आडंबर, रूढ़ियां और अंधविश्वासों पर कुठाराघात किया, मानव में आत्म गौरव का भाव जगाया| अपनी व्यक्तिगत धार्मिक अनुभूति और सामाजिक आलोचना द्वारा संतों ने जनता को विचार के स्तर पर प्रभावित किया, वहीं सूफी संतों ने अपने प्रेमाख्यानों द्वारा लोकमानस को भावना के स्तर पर प्रभावित करने का प्रयत्न किया| ज्ञान मार्गी संत कवियों की वाणी मुक्तबद्ध है तो प्रेम मार्गी कवियों की प्रेम भावना आख्यानों का आधार लेकर प्रबंध काव्य के रूप में विकसित हुई है| सगुण धारा के कवियों ने विचारात्मक शुष्कता और प्रेम की एकांगिता दूर कर जीवन के सहज उल्लासमय और व्यापक रूप की प्रतिष्ठा की| कृष्ण भक्त कवियों ने आनंदस्वरूप लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के मधुर रूप की प्रतिष्ठा, जीवन के प्रति गहन राग को स्फूर्त किया| राम काव्य में जीवन की विविधता और विस्तार की मार्मिक योजना दिखाई देती है| कृष्ण काव्य मे स्वच्छंदराग तत्व को महत्व दिया गया तो राम काव्य में मर्यादित लोक चेतना पर विशेष बल दिया गया| एक ने भगवान की लोकरंजनकारी सौंदर्य प्रतिमा का संगठन किया तो दूसरी धारा ने उसके शक्ति, शील और

सौंदर्य मयी लोक मंगलकारी रूप को प्रकाशित किया| इस प्रकार लोक जागरण की दृष्टि से संपूर्ण भक्ति काव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों के कारण है| इसी विचार से भक्ति काल को हिंदी काव्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है| संत कवियों ने समाज में फैले हुए विभिन्न आडंबरों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों को दूर करने का प्रयास किया और जनता को सच्चे एवं अच्छे मार्ग की ओर अग्रसर किया| राम भक्त कवियों के सामने लोकमंगल का आदर्श रहा इसीलिए उन्होंने ईश्वर के एक ऐसे आदर्श रूप को सामने रखा जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणा दे, यही कारण है कि रामभक्ति काव्य में लोक जीवन की उपेक्षा नहीं है बल्कि जीवन के संघर्षों के बीच ही उनके चरित्र का उज्जवल रूप हमारे सामने आता है| राम भक्त कवियों के सामने समाज की मर्यादा की रक्षा करना एक उद्देश्य रहा, इसीलिए उन्होंने विरोधी प्रवृत्तियों के बीच समन्वय का प्रयास किया|

अपनी प्रगति जाँचिये(बोध प्रश्न)

1 भक्ति आंदोलन का प्रारंभ कहां से हुआ?
2 अद्वैतवाद का दर्शन किसने दिया?
3 कबीर दास किस धारा के संत थे?
4 अष्टछापी परंपरा में कितने कवि आते हैं?
5 सूरदास की प्रसिद्ध रचना का नाम बताएं?
6 लोकनायक किस कवि को कहा जाता है?
7 विनय पत्रिका किसकी रचना है?
8 कबीर की वाणी किस ग्रंथ में संकलित है?
9 प्रेम मार्गी शाखा के दो कवियों के नाम लिखिए?
10 किसकी भक्ति कविताओं को अभंग कहा जाता है?

11 नानक वाणी किस ग्रंथ में संकलित हैं?

12 शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु कौन थे?

2.6 सारांश

ईश्वर के प्रति गहरी अनुरक्ति का नाम भक्ति है और भक्ति के लिए ना तो कठोर साधना की आवश्यकता होती है और ना ही शास्त्र सम्मत विधि निषेध के पालन की|भक्ति के लिए तो ईश्वर का स्मरण, पाद सेवन, कीर्तन और पूजन अर्चन ही पर्याप्त है| ईश्वर की उपासना का सहज और सुगम मार्ग भक्ति है| भक्तों के लिए केवल प्रेम की आवश्यकता होती है| यह भक्ति गुरु की कृपा से प्राप्त होती है| ईश्वर का नाम स्मरण ही

भक्ति के लिए पर्याप्त है| भक्ति काव्य अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में लिखे गए| ज्ञान मार्गी कवियों ने साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग किया| हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है| आदिकाल के पश्चात सं1375 से सं 1700 तक की कालावधि भक्तिकाल की मानी जाती है| दक्षिण में आलवार भक्तों द्वारा भक्ति उपजी और रामानंद द्वारा उत्तर में लाई गई|

भक्ति द्राविण ऊपजी लाए रामानंद|

परगट किया कबीर ने सप्त दीप नव खंड||

भक्ति काल के पूर्व देश की धार्मिक चेतना को बड़ी ही विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था| ब्राह्मण धर्म की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी और बौद्ध धर्म की लोकप्रियता क्षीण हो चुकी थी| वह सहजयान और वज्रयान में बंटकर अत्यंत विकृत हो गया था| जिस प्रकार देश के पूर्वी भागों में सिद्धों का प्रभाव था उसी प्रकार पश्चिमी भाग पंजाब और राजस्थान में नाथपंथी योगियों का प्रभुत्व था| रामानंद और उनकी शिष्य मंडली ने दक्षिण की भक्ति गंगा को उत्तर में प्रवाहित किया| भारत भर में उस समय पहुंचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ| महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया|साधना के क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय उस समय विद्यमान थे| नाथों के योग मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्व संत कबीरदास जी का है| कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएं लिखी गईं| भक्तियुग की दो प्रमुख धाराएं निर्गुण भक्तिधारा और सगुण भक्तिधारा हैं |निर्गुण धारा की दो शाखाएं ज्ञानाश्रयी शाखा तथा प्रेममार्गी शाखा और इसी प्रकार सगुण धारा की कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा हैं|

भक्ति कालीन कवियों ने भक्ति भाव के साथ ही साथ लोगों में नवीन आत्म चेतना का संचार किया और अपने उन्नत काव्य के माध्यम से समाज को एक नई दिशा दी| इन कवियों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त जात-पात के भेदभाव को दूर कर समाज में मानवतावाद की स्थापना करने का प्रयास किया| ज्ञानमार्गी शाखा में कबीर, दादूदयाल, गुरु नानक जैसे अनेक संत आते हैं जिन्होंने निर्गुण मत का प्रचार प्रसार किया और भक्तों के लिए गुरु को आवश्यक माना क्योंकि गुरु ही जीव को परमात्मा तक ले जाने का ज्ञान देता है| निर्गुण परंपरा की प्रेम मार्गी शाखा में ही मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन जैसे सूफी कवि आते हैं इन्होंने ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रेम को महत्व दिया है| सगुण भक्तिधारा में ईश्वर के सगुण और साकार रूप की उपासना की गई है| कृष्णमार्गी शाखा में कृष्ण को इष्ट मानते हुए काव्य लिखे गए हैं| इस काल में अष्टछापी परंपरा प्रारंभ हुई| इस परंपरा में आठ कवि आते हैं जो श्रीनाथ मंदिर में कृष्ण की पूजा अर्चना करते हुए साहित्य का सृजन करते थे| सूरदास ने कृष्ण की लीलाओं का गान करते हुए उसका सजीव चित्र संसार के सम्मुख प्रस्तुत किया है| रामभक्ति शाखा में तुलसीदास, नाभादास, अग्रदास जैसे कवि आते हैं|इन्होंने राम को इष्ट के रूप में लेते हुए उनका लोकरक्षक रूप प्रस्तुत किया है और समसामयिक परिस्थितियों का निरूपण अपनी कविताओं द्वारा इस प्रकार किया है कि वह आने वाले समय में लोकनायक बन गए| भक्ति आंदोलन प्राचीन ज्ञान एवं दर्शन की एक

अविछिन्न धारा है जो अत्यंत शक्तिशाली एवं व्यापक है| भागवत पुराण के अंतर्गत भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख मिलता है जिसे नवधा भक्ति कहा जाता है| श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, वंदन, दास्य, अर्चन, सख्य, आत्म निवेदन को नवधा भक्ति के नाम से जाना जाता है| निर्गुण निराकार और निर्विविशेष के प्रति होती है वही सगुण में साकार सविशेष के प्रति होती है|

इकाई 4 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि

4.0 परिचय

आधुनिक ज्ञान- विज्ञान एवं तकनीकी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नवीन अरोमैंटिक एवं अमिथकीय साक्षात्कार 'आधुनिकता ' है। जीवनगत आधुनिकता के प्रवेश का प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता है। साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा गया है। साहित्यकार साहित्य में समाज की तस्वीर रवींचता है, इसलिए साहित्यकार को एक कुशल चित्रकार भी कहा जाता है। आधुनिकता का प्रभाव पहले समाज पर पड़ता है फिर साहित्य में उसकी तस्वीर खींची जाती है। साहित्य राष्ट्र की सामाजिक , राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, वह उन परिस्थितियों से अपना वर्ण्य –विषय , रूप , विधा, आकार और परिमाण ग्रहण करता है। भारतीय इतिहास व साहित्य का आधुनिक काल 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। मगर इसके काफी पीछे से पृष्ठभूमि का निर्माण का निर्माण हो रहा था।

'आधुनिक' शब्द कालवाचक 'अधुना' अव्यव से बना है। 'अधुना ' का अर्थ है 'इस समय', 'संप्रति', 'वर्तमान काल' । अतः 'आधुनिक' का अर्थ है 'इस समय का', 'हाल का', 'नया', 'वर्तमान समय का'। इस दृष्टि से केवल अपने सामने उपस्थित समय को हो 'आधुनिक काल ' कह सकते हैं। वास्तव में 'आधुनिक' शब्द सापेक्षिक है। जहाँ आधुनिक शब्द काल सापेक्षता को व्यक्त करता है वहीं यह नवीनता वैज्ञानिक दृष्टि, बौद्धिकता और तर्क-वितर्क की प्रवृत्ति का भी सूचक । साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिंदी साहित्य के इतिहास के उस काल को 'आधुनिक' कहा है जिसमें हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता , संस्कृति , भाषा , जीवन-पद्धति, राजनीति, शासन-व्यवस्था , विज्ञान से हुआ।

सार्त्र , कीरके गार्ड आदि दार्शनिकों के आस्तित्ववादी विचारों का पाश्चात्य आधुनिक साहित्य पर जोरदार प्रभाव पड़ा है। हिंदी साहित्य भी आस्तित्ववादी प्रभाव से अछूता नहीं रहा। सातवें दशक के हिंदी साहित्य में प्रणीत कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं के नाम में 'अ' उपसर्ग जुड़ गया अर्थात अकविता, अकहानी, अ-नाटक, अ-उपन्यास लेखन का प्रचलन हुआ। नवोस्थित इन प्रवृत्तियों ने मात्र साहित्य रचना के परम्परा स्वरूपों को झकझोरने का दृढ़ प्रयास किया। साथ ही , इन रूपों के मध्य अनिश्चय , व्यर्थता, असंतोष, अकेलेपन, अजनबीपन, आत्म-निर्वासन आदि भावनाओं को व्यक्त किया गया।

लगभग 200 वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारत में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिये जिनकी कल्पना भी नहीं की गई थी। इससे ध्वनित होता है कि भारत में आधुनिक काल लाने का श्रेय अंग्रेजी

उपनिवेशवाद को है। जिसतरह भक्ति आंदोलन के बारे में प्रश्न उठाया जाता है कि यदि मुसलमान न आये होते तो भक्ति आंदोलन की लहर ना उठती, उसीप्रकार कहा जाता है कि कि यदि अंग्रेज न आये होते तो आधुनिक काल ना आता। वैसे ऐतिहासिक प्रक्रिया के तहत कालों को तो आना ही होता है किंतु अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने आधुनिक काल आने की प्रक्रिया को तेज कर दिया। हिंदी जगत ने इन नयी परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और बीच का मार्ग भी अपनाकर अपने सार्वभौमिता सिद्ध की। भारतीय चिंतको एवं साहित्यकारों ने अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आंदोलनो द्वारा आधुनिक भारत एवं आधुनिक भारत एवं आधुनक हिंदी साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

* आधुनिक काल की पृष्ठभूमि से परिचित हो पाएंगे ;

* आधुनिक काल के प्रारंभ एवं नामकरण के बारे में जान पाएंगे;

* 19वीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नव जागरण के स्वरूप का विवेचन कर पाएंगे;

*भारतेंदु पूर्व खड़ी बोली के कवि-संत गंगादास एवं अन्य कवियों से परिचित हो पाएंगे ;

* हिंदी काव्य को भारतेंदु जी के अवदान के बारे में जान पाएंगे ;

* भारतेंदु मंडल के कवियों और अन्य कवियों से परिचित हो पाएंगे;

* काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग से अवगत हो पाएंगे ;

* भारतेंदु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;

* द्विवेदी युग में नये काव्य परिवर्तन के स्वरूप से अवगत हो पाएंगे;

* महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन हिंदी कविता के बारे में जान पाएंगे ;

* द्विवेदी युगीन कविता की प्रमुख प्रवृतियों , रचनाओं और रचनाकारों से परिचित हो पाएंगे ;

* छायावाद की पृष्ठभूमि , नामकरण और सीमांकन के विषय में जान पाएंगे;

* प्रमुख छायावादी कवि और उनके काव्य से अवगत हो पाएंगे ;

* छायावादकालीन अन्य प्रमुख कवियों और उनके काव्य से परिचित हो पाएंगे ;

* छायावादी कविता के मान-मूल्य की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे ;

* छायावादकालीन कविता के समाज-सांस्कृतिक और राजनैतिक चरित्र से अवगत हो पाएंगे ;

* छायावादकालीन काव्य-भाषा के स्वरूप से परिचित हो पाएंगे।

4.2 आधुनिक काल की पृष्ठभूमिः सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिककाल ' हिंदी भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय काल है। इसके पूर्व के कालों आदिकाल(वीरगाथा काल), पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल), उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) में जहाँ हिंदी साहित्य का विकास श्रेत्रीय भाषाओं (अपभ्रंश, मैथिली, राजस्थानी, ब्रज,)अवधी आदि के माध्यम से काव्य रचना के क्षेत्र में हुआ, वहीं आधुनिककाल (गद्यकाल) में गद्य-पद्य दोनों का समान विकास हुआ, वह भी हिंदी के सर्वमान्य स्वरूप खड़ीबोली के माध्यम से। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल का साहित्य प्रत्येक दृष्टि से नवीनता का वाहक बनकर नवोन्मेष के कारण ध्यान सवार्धिक आकृष्ट करता है। सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों में जन आकांक्षाओं के अनुरूप जन आंदोलन को प्रेरित करने के कारण इस काल को पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी गयी है। जिसे भक्ति आंदोलन बाद सबसे व्यापक आंदोलन के रूप में स्वीकार लिया जाता है। बदलते हुए आधुनिक परिवेश में आधुनिक काल विभिन्न परिस्थितियों की देन है। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता की तरफ इस काल में अनुभव करने लगा था। परंपराएँ टूटी , रूढ़ियों और पाखंडो का विरोध हुआ, लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा था। इस युग में बहुत से अन्तर्विरोधों के बावजूद वैचारिक मान्यताओं के स्त्रोतो ने जनसामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया। आधुनिक काल का विवेचन करने के क्रम में तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख समीचीन होगा।

1. **सामाजिक परिस्थितियाँ**

भारत की संस्कृति सदैव से समन्वय प्रधान रही है। भारत ने सदैव से विदेशी सभ्यताओं को भी आत्मसात् किया। इस्लाम के प्रवेश के साथ-साथ संस्कृति में बदलाव आना प्रारंभ हुआ। फिर अंग्रेजों के भारत में प्रवेश करने और धीरे-धीरे भारतीय जनजीवन के अधिक संपर्क में आने के फलस्वरूप इनकी सभ्यता ने भारतीय समाज और जनमानस की अत्यधिक गहराई तक प्रभावित किया। यह प्रभाव अनूकुल था और प्रतिकूल भी। आंग्ल समाज के सक्रिय प्रयास नए-नए अविष्कार और विचारधारा एवं आधुनिकता को निरंतर बढ़ती हुई चेतना अनुकूल प्रभाव के परिचायक हैं, तो राष्ट्रप्रेम समाज सुधार परंपरागत कुरीतियों और रीति-रिवाजों का विरोध आदि प्रतिकूल (प्रतिक्रियात्मक) प्रभावों के साक्षी हैं। आंग्ल संपर्क ने एक ओर तो भारतीय मानस को सजग-सक्रिय किया और दूसरी ओर अपने अच्छे –बुरे क्रिया –कलापों से एक नए वातावरण को जन्म दिया। इस वातावरण की नवीनता (वैज्ञानिक आविष्कार और अंग्रेजी शिक्षा एवं संस्कृति के प्रसार) से आधुनिकता की चेतना उत्पन्न हुई और युगों-युगों से चली आ रही सामाजिक नीति, आचार-विचार, आस्था और विश्वास में परिवर्तन हुए। भारतीय समाज के अधिकांश लोग आत्महीनता की भावना से पीड़ित थे। इसलिये उनके द्वारा पाश्चात्य जीवन प्रणाली का खूब अनुकरण हुआ। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में यह वर्ग स्वार्थवश सक्रिय रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वास्तविक सला इसी अफसरशाही वर्ग के हाथ में आई।

अंग्रेजों ने भारत का सिर्फ शोषण ही नहीं किया अपितु अनेक वैज्ञानिकआविष्कार भी वे ही लेकर आ गए थे। भारतीय समाज को कुरीतियाँ को दूर करने में वे निरंतर सक्रिय रहे थे तथा उन्होने ही अनेक बौद्धिकवाद और विचार प्रदान किये । इसी क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारतीयों में नयी चेतना का संचार हुआ। पाश्चात्य शिक्षा से अनेक भारतीय मनीषियों में अपने देश के ज्ञान , विज्ञान, साहित्य, संस्कृति से लेकर अध्यात्म दर्शन के प्रति आदर और राष्ट्रप्रेम की भावना जागृत हुई। कलकत्ता में एशियाटिक कॉलेज और फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई तो काशी में संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। रामकृष्ण परमहंस , राजा राममोहन राय (ब्रह्मासमाज), दयानंद सरस्वती(आर्य समाज) , विवेकानंद, महर्षि अरविंद जैसी अनेक विभूतियों ने भारतीय समाज में आमूल –चूल क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। निसंदेह इन सबका एक सशक्त माध्यम आधुनिक साहित्य गद्य-पद्य भी बना। भारतेंदुयुगीन काव्य का राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति और भारतीय दुर्दशा का अंकन, द्विवेदीयूगीन साहित्य में समाज सुधार और स्वदेश महत्ता की प्रबलता, छायावादी बौद्धिकता और प्रगति, प्रयोगवादी यथार्थक्रियता सब इसी सामाजिकता बोध की देन है। सन् 1857 के उपरांत प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्वेषण का कार्य किया गया। भारतीय मनीषी भी बर्क, मिल, मैकाले, लॉक, मिल्स आदि से प्रभावित हुए।

2. <u>राजनीतिक परिस्थितियाँ</u>

आधुनिककाल में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, देशप्रेम, जनजागरण, विदेशी शाक्तियों के प्रति तीव्र आक्रोश, शोषण तथा अत्याचार के विरूद्ध जनाक्रोश की भावना आदि प्रवृत्तियाँ तत्कालीन परिस्थितियों में प्रमुखता से प्रकट हो रही थी। आधुनिककाल से पूर्व के समय पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होगा कि वह पूरी तरह से संघर्ष का काल था। हालांकि मुस्लिम शासक आक्रमणकारी बनकर भारत में आए थे, पर इस समय तक वे यहाँ की सभ्यता और संस्कृति में रचबस गए थे तथा वे पूरी तरह से भारतीय हो गये थे। जब अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई आरंभ हुई तो उनके विरुद्ध हिंदू-मुसलमान दोनों साथ-साथ मिलकर लोहा ले रहे थे। व्यापारिक कंपनी के रूप में आयी ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे-धीरे अपना असली रूप दिखाना प्रारंभ किया। भारत में यूरोपीय जातियों-पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डचों का भी आगमन हुआ। यहाँ के शासकों से भिन्नता कर पुर्तगालीयाँ ने गोवा, दमन व दीव में, फ्रांसीसियाँ ने चन्द्रनगर , पांडिचेरी तथा माही में अपने उपनिवेश स्थापित किये।

जहाँगीर ने अंग्रेजो को व्यापार की अनुमति दी। जहाँगीर , शाहजहाँ तथा औरंगजेब के समय तक अंग्रेज व्यापारी भारत की आंतरिक राजनैतिक दशा समझ चुके थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1757 में 'विलय का सिद्धांत बना लिया था। इसके माध्यम से उन्होने सतारा, नागपुर, झासी, जैतपुर, संमलपुर, बघाट, बंगाल, और 1856 ई. में डलहौजी ने अवध को अपने अधिकार में ले लिया। डलहौजी और उसके पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों ने कुछ ऐसे विशेष कार्य और सुधार किये जिनसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हुआ। लार्ड डलहौजी ने रेल, डाक और तार व्यवस्था को बनाया और व्यवस्थित किया। मैकाले ने विलियम बैंटिक को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारत में शिक्षा के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप बंबई , कलकत्ता , मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित हुये। यद्यपि इन कार्यों के पीछे अंग्रेजो का मुख्य

उद्देश्य अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति करना ही था, तथापि इनके सहज परिणामस्वरूप भारत में विकास , प्रगति और चितंन के नये आयाम स्थापित हुए। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय से जिस ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार आरंभ हुआ था, वह 1547 ई. में सारे भारत को आक्रांत कर अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया। अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए हिंदू-मुसलमानों का एक हो जाना इस काल की महत्वपूर्ण घटना थी। भारतीय – अंग्रेज संघर्ष की राजनैतिक दृष्टि से झकझोर देनेवाली एक और प्रमुख घटना प्रथम विश्वयुद्ध था। अंग्रजों की कूटनीति ने भारतीयों को चौंकाया ही नहीं सजग और सम्बद्ध भी कर दिया, भारतीयता की भावना को विकसित वर्धित करने के लिए अतीत प्रेम से लेकर समाज सुधार तक सभी पर बल देना इस युग में स्वाभाविक ही था।

प्रथम विश्वयुद्ध की विफलता और अंग्रेजों के बढ़ते हुए अत्याचारों ने भारतीय-विशेषतः युवा वर्ग को निराश कर दिया। एक ओर इसी का परिणाम अर्थात पलायन प्रवृत्ति छायावाद काव्य में प्रस्फुरित हुई , तो दूसरी ओर हिंसात्मक आक्रोश और देशप्रेम राष्ट्रीयतावाली काव्यधारा में , जिसकी एक दिशा प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है। राष्ट्र में अंतर्राष्ट्रीयता, मानव से मानवतावाद, पूँजीवाद से व्यक्तिवाद और समाजवाद, उपदेश भरे आदर्श से कटु यथार्थ, उच्चवर्ग से निम्नवर्ग और परंपराओं के विरोध से नवमान्यताओं की प्रतिष्ठा तक इसी राजनीतिक चेतना की देन है।

3. <u>आर्थिक परिस्थितियाँ</u>

भारत की आर्थिक स्थिति अंग्रेजों के आगमन के बाद अत्यंत शोचनीय होती चली गयी। अंग्रेजों ने आर्थिक दृष्टि से देश की खोखला कर दिया, अंग्रेज व्यापारी थे। सोने की चिड़िया (भारत) के स्वर्ण पंखो को काटने वाले पूर्ववर्ती आक्रांताओं की भाँति उन्होने भारत को लूटा भी और अपने व्यापार कौशल से कब्जाया भी। ईस्ट इंडिया कंपनी से प्रारंभ किया गया उनका व्यापार, व्यवहार रबड़ की तरह फैलता चला गया। परिणामतः एक ओर तो भारतीय परंपरागत उद्योग धंधे ठंडे पड़ते गए और दूसरी ओर भारतीय सभ्यता इंग्लैण्ड की मोहताज होती गयी। ओद्यौगिक गिरावट भारतीय जनसाधारण के हालात को और भी गिराती चली गयी। मंहगाई, निर्धनता, अकाल, टैक्स इस युग की सामान्य आर्थिक कठिनाईयाँ थीं। महायुद्धों ने इनको और भी परवान चढ़ाया इधर अंग्रेजो की कूटनीति ने भारतीय उद्योगों और कृषि आदि को पनपने से रोका जिसमें पूँजीपतियाँ और जमींदारों ने इसमें भरपूर सहयोग दिया। अंग्रेजो ने पुरानी आर्थिक संरचना को बदला, जमीन का नया बंदोबस्त किया। व्यावसायिक खेती को बढ़ावा मिला। कच्चा माल प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने कपास, पटसन, जुट और नील की खेती के लिए किसानों को बाध्य किया। जौ, गेहूँ, धान के स्थान पर डर के मारे किसान नील बोते थे। इससे खाद्यान्न कम पड़ जाता था। बंगाल में इसका विरोध हुआ। चंपारन में गाँधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन भी मुख्यतः नील की खेती के विरोध में किया था। कच्चा माल विदेश भेजा जाता और वहाँ से पक्के माल के रूप में बदलकर भारत के बाजारों में पहुँचता था। इस बन्दोबस्त से नये वर्ग संबंधों की सृष्टि हुई। आर्थिक संरचना का जो यह नया रूप सामने आया, वह ने तो पूँजीवादी था न सामंतवादी और न ही मुगलों की पुरानी व्यवस्था की कोई कड़ी था। यह एक नया ढ़ाँचा था, जिसे उपनिवेशवाद ने बनाया। विवश भारतीय समाज में एक वर्ग का उदय नौकरीपेशा के रूप में हुआ, यह भी कुछ ही समय में

बेकारी, निराशा और दरिद्रता आदि को आगे बढ़ाने में परिणीत होने लगा। परिणामस्वरूप द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विद्रोह और प्रतिहिंसा की भावनाओं का उदय, यथार्थप्रियता की बढ़ोतरी और समाजवादी व्यवस्था पर जोर देने जैसे कार्यों में भारतीयों की प्रतिक्रिया प्रकट हुई जिसमें साहित्य ने भी अपना सर्वाधिक योगदान किया।

4. **<u>सांस्कृतिक परिस्थितियाँ</u>**

आधुनिक युग के इस परिवेश में ब्रिटिश जाति के भारत में सत्तारूढ़ हो जाने के परिणामस्वरूप भारतीय और युरोपीय संस्कृति के संघर्ष को देखा जा सकता है। उपनिवेश-विरोधी चेतना जाग्रत करने का सर्वाधिक श्रेय पाश्चात्य शिक्षा को है। जनता पर जो प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई वह भारतीय संस्कृति के कारण। इनलोगों ने स्वयं अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारत के अतीत को खोजा। यदि देशी भाषाएँ शिक्षा का माध्यम होती (एक प्रमुख देशी भाषा)तो आज देश का सांस्कृतिक-राजनीतिक नक्शा दूसरा होता। राष्ट्रीयता की भावना और अपनी भाषा के प्रचार में लगे हुए एक ऐसे मध्यवर्ग का इस काल में उदय हुआ जिसने नवजागरण के उन्नयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

तत्कालीन निषेधात्मक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था से जूझने का कोई उपाय न था किन्तु अंग्रेजों के शोषण, लूट, धनापहरण के प्रति सभी सचेत थे। कुछ लोगों के हिसाब से संस्कृति विचारधारा नहीं है। उसकी अपनी स्वायत्ता है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए समाज में संस्कृति का सामाजिक तथा मूल्यगत महत्व है। वाल्टर बेन्जामिन ने ठीक ही लिखा है कि किसी खतरे के समय संस्कृति का रचनात्मक स्मरण होता है। तीसरी दुनिया के पिछड़े हुए देशों ने अपने सांस्कृतिक जागरण को राष्ट्रीय जागरण में बदल दिया । इस नवजागरण का बहुत कुछ दायित्व दो संस्कृतियों की टकराहट में अपनी अस्मिता की पहचान में था । उपनिवेशवादी अंग्रेज यहाँ की संस्कृति को हेठी की दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि में भारतीय निर्मम बर्बर थे। ईसाई मिशन हिन्दुओं-मुसलमानों के धर्म पर आक्रमण कर रहे थे, उनका उत्तर देना भी आवश्यक था। भारतीय नवजागरण से सम्बद्ध महापुरुषों ने, राजा राममोहन राय से महात्मा गाँधी तक , अपनी अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा जनता की जागरूकता के लिए भारतीय संस्कृति का आधार ग्रहण किया। उपनिवेशवादियों ने भारतीय संस्कृति को भी हीन ठहराया और कला तथा साहित्य को भी। इस सबके परिणास्वरूप सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से भी आधुनिक काल अत्यंत महत्वपूर्ण युग कहा जा सकता है।

अतीत के माध्यम से वर्तमान समस्याओं का , पुराख्यानों , पुरासंदर्भों तथा ऐतिहासिक पात्रों या चरित्रों का गुणगान साहित्य में भी होने लगा। सांस्कृतिक चेतना साहित्य में ढलने लगी। आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्यकार, कलाकार तथा चित्रकार आदि को तो प्रभावित किया ही, साहित्य की विभिन्न विधाओं, भाषाओं , शैलियाँ तथा माध्यमों को भी प्रभावित किया। पत्रकारिता के विकास ने हिंदी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया साथ ही पद्य साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

अतः आधुनिक काल के हिंदी साहित्य, भाषा, संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं पर भी अंग्रेजो के उपनिवेशवाद में पश्चिमीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। तत्वकालीन भाषा, मुहावरों,

संस्कृति, मानसिकता एवं विषय-वैविध्य पर इस विदेशी प्रभाव को देखा जा सकता है। यह मिश्रित संस्कृति का सूचक है।

4.3 आधुनिक काल का प्रारंभ और नामकरण

किसी काल के प्रारंभ की तिथि वैज्ञानिक तथ्यों से बता पाना असंभव है। एक काल से दूसरे काल का परिवर्तन प्रवृत्तिगत परिवर्तन के कारण होता है। परिवर्तन की प्रक्रिया विगत से चलती रहती है परंतु अभिनव काल का निर्धारण उस समय होता है जिससमय परिवर्तन का प्रभाव हमारी सांस्कृतिक , आर्थिक काल रूपों एवं भाषा पर प्रकट होता है। इसलिए साहित्य के इतिहास का काल निर्धारण इतिहास की तरह तिथियों में आबद्ध नहीं होकर वर्षों में आबद्ध होगा। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के संकेत 18 वीं सदी से ही प्रारंभ हो गये थे परन्तु स्पष्ट प्रभाव 19 वीं सदी से दिखायी पड़ा। हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक हिंदी साहित्य अपने पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य से वर्ण्य , रूप , विद्या आदि में भिन्न है। उसमें परिवर्तन की गति भी पूर्ववर्ती साहित्य को गति का अपेक्षा बहुत अधिक रही है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। सामान्यता इसका प्रारंभ संवत् 1900 अर्थात 1843 ई. से माना जाता है। कुछ विद्वानों ने 1857 से नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना।इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है- "सामान्यतया रीतिकाल के अंत(1943) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है, नवीन सामाजिक- राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है, किंतु साहित्य- क्षेत्र में नयी विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेन्दु के रचनाकाल से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किंतु उसे भारतेन्दु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता ।"

नामकरण

आधुनिक शब्द दो अर्थों का द्योतक है, एक है- मध्यकाल से भिन्नता और दूसरा-इहलौकिक दृष्टिकोण। 1857 का विद्रोह मध्ययुग की समाप्ति एवं आधुनिक युग के प्रारंभ का शंखनाद था। देश के प्रबुद्ध वर्ग में नयी चेतना का संचार हुआ। इसी प्रकार रीतिकाल में साहित्य अपने कथ्य और शैली की दृष्टि से रूढ़ हो चुका था । आधुनिक काल ने इसी जड़ता को समाप्त करके नवजागरण का संदेश दिया। साहित्यकारों ने मनुष्य के सुख-दुख को वाणी दी। साहित्य का प्रधान विषय सांसारिक हो गया तथा धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र आदि के प्रति नया दृष्टिकोण सामने आया। इस प्रक्रिया में विषय, कथ्य के साथ-साथ भाषा भी परिवर्तित हो गई, खड़ी बोली ने ब्रजभाषा का स्थान ले लिया। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को दो खंडों में

विभक्त किया है। पुनः दोनों खंडों को दो प्रकरणों में विभक्त किया है। गद्य के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा तथा दूसरे में खड़ी बोली है। जबकि दूसरे खंड को काव्य रूप में निरूपित किया तथा इसे तीन उत्थानों में विभक्त किया है। यदि इस विभाजन को सूक्ष्मता से अवलोकित किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें एकरूपता और समानता का अभाव है। इससे इतिहास की निरंतरता बाधित हुई है। साथ ही उन्होंने इस युग को 'गद्य युग' कहना उपयुक्त नहीं है। इसलिए इस कालखंड का नाम 'आधुनिक काल' ही अधिक समीचीन है। इस नामकरण और युगीन प्रवृत्तियों में गद्य-पद्य की समस्त साहित्यिक विधा का स्वतः समावेश हो जाता है। आधुनिक काल को निम्न रूपों में विभक्त किया जा सकता है-

(क) पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल) -1857-1900 ई.

(ख) जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) -1900-1918 ई.

(ग) छायावाद -1981-1936 ई.

(घ) छायावादोत्तर काल

1. प्रगति-प्रयोग काल -1936-1950 ई.
2. नवलेखन काल -1950- अब तक
3.

4.4 उन्नीसवीं शताब्दी में स्वाधीनता संघर्ष एवं भारतीय नवजागरण (1857 ई. के संदर्भ में)

भारतीय इतिहास का आधुनिक काल 19 वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। भारत में अंग्रेज जहाँगीर काल में व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में आए लेकिन धीरे-धीरे उन्होने उपनिवेशवाद द्वारा अपना साम्राज्य पूरे भारत में फैलाना शुरू किया। उन्होने लगभग 200 साल तक भारत पर शासन किया। वर्ष 1757 ई. के प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश जनों ने भारत पर राजनैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया और उनका प्रभुत्व लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल में यहाँ स्थापित हो गया। सन् 1818 ई. महाराष्ट्र अंग्रेजों के अधीन हो गया। सन् 1856 ई. में अवध भी अंग्रेजी राज्य का अंग बन गया। ऐसे में असंतुष्ट स्थानीय शासकों, मजदूरों, बुद्धिजीवियों तथा सामान्य नागरिकों ने सैनिकों की तरह आवाज उठायी। यह एक बगावत के रूप में फूटा जिसने 1857 ई. के विद्रोह का आकार लिया। यह एक सुनियोजित जनक्रान्ति थी जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह, अमर सिंह, तांत्या टोपे आदि ने प्राणों की आहुति दी। हिंदी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह व्यापक स्वतंत्रता संग्राम सबसे पहले प्रारंभ हुआ। कुछ इतिहासकारों ने इसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी है तो कुछ ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा। इसके प्रेरक नाना साहेब थे। इसके लिये कई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारक उत्तरदायी थे। सारे देश में एक साथ सुनियोजित विद्रोह के लिये 31 मई 1857 का दिन निर्धारित हुआ। किंतु कारतूसों में निषिद्ध चर्बी के प्रयोग होने और सैनिकों को ऐसी कारतूस मुँह से खोलने के लिये कहा गया इससे

उनकी धार्मिक भावनाएँ आहत हुई, हिंदु-मुस्लिम दोनों ही सैनिकों ने इन कारतूसों का उपयोग करने से मना किया, जिन्हें अपने साथी सैनिकों द्वारा क्रांति करने के लिए गिरफ्तार लिया गया।

भारतीय सैनिक निश्चित तिथि से दो महीने पहले ही उत्तेजित हो उठे। मंगल पांडे ने 29 मार्च 1857 को विद्रोह कर दिया। उनकी टुकड़ी का विद्रोह सारे देश में विद्रोह की आग स्वरूप फैल गया। बगावती सेना ने जल्दी ही दिल्ली पर कब्जा कर लिया और अवध, रोहलखण्ड, बुंदेल खण्ड, इलाहाबाद, आगरा, मेरठ और पश्चिम बिहार में लड़ा गया। विद्रोह सेनाओं में बिहार में कँवरसिंह के तथा दिल्ली में बख्तखान के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन को एक करारी चोट दी। कानपुर में नाना साहेब ने पेशावर के रूप में उद्घोषणा की और तात्या टोपे ने उनकी सेनाओं का नेतृत्व किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने ब्रिटिश के साथ एक शानदार युद्ध लड़ा और अपनी सेना का नेतृत्व किया। भारत के हिंदु, मुस्लिम , सिक्ख और अन्य वीर पुत्र कंधे से कंधा मिलाकर लड़े और ब्रिटिश राज को उखाड़ने का संकल्प लिया। इस क्रांति को ब्रिटिश राज द्वारा एक वर्ष के अंदर नियंत्रित कर लिया गया जो 10 मई 1857को मेरठ में शुरू हुआ और 20 जून 1853 को ग्वालियर में समाप्त हुई। इस स्वतंत्रता संग्राम ने भारत के सभी प्रांतों के साहित्यकारों को प्रेरणा दी। हिंदी में आधुनिककाल में अनेक साहित्यकारों ने इसे उपन्यास , नाटक और कविता की विषय बनाया। सुभद्राकुमारी चौहान की पंक्तियाँ-

'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' इसी से प्रेरित थीं।

1857 की क्रांति के विषय में अनेक देशी-विदेशी इतिहासवेत्ताओं ने अपने मत व्यक्त किये है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है-"यह एक सुनियोजित क्रांति थी। विद्रोह के नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे और निःस्वार्थ देशभक्ति का एक समूह देश के कोने-कोने में इसकी अलख जगा रहा था, जिन्हें अपने देश की स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था।"

डॉ. के. एम. पाणिक्कर ने लिखा- "यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने सांप्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदू- मुसलमानों ने मिल-जुलकर कार्य किया।"

1857 की यह स्वाधीनता क्रांति निश्चय ही एक व्यापक जन-आंदोलन थी, इसका प्रमाण बहादुरशाह का वह महत्वपूर्ण घोषणा-पत्र है जो उस वर्ष 'पयामे आजादी' नामक एक सामाचार पत्र में छपा था। जब बहादुरशाह को अंग्रेज हडसन ने बंदी बना लिया और उससे कहा-

दमदमें में दम नहीं, अब खैर मांगे जान की।

ए 'ज़फर' बस हो चुकी शमशीर हिंदुस्तानी की।।

इस कटु उक्ति को सुनकर कवि हृदय, देशभक्त भी स्वाधीनता के लिए बलिदान को उत्सुक बहादुरशाह ने जो उद्गार प्रकट किये, वह किसी भी राष्ट्र-प्रेमी को सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

हिन्दियों में बू रहेगी, जब तलक इमान की।

तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिंदुस्तानी की।।

1857 की इस घटना के बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में एक अधिनियम पारित कर भारत के प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर इंग्लैड की सरकार को सौंप दिया। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा-पत्र द्वारा भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का कूटनीतिक प्रयास किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए इंडियन काउंसिल बनाई गई और भारत सचिव के पद की स्थापना हुई। तत्पश्चात लार्ड मेयो तथा रिपन ने उदार नीति अपनाई। भारतीय जनता में राजनैतिक और राष्ट्रीय चेतना बढ़ती जा रही थी। 1885 ई. में ए. औ. ह्यूम के प्रयत्न से राष्ट्रीय क्रांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारंभ में यह राजभक्त संस्था थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक सुधारों तक सीमित था। किंतु बाद में लार्ड डफरिन की प्रेरणा से इसने राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य करना आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य किया जिसके द्वारा सब वर्गों और धर्मों के भारतीय मिलकर संवैधानिक प्रयासों से सरकार के समक्ष अपनी मांगे रख सकें। तत्पश्चात ब्रिटिश सरकार ने 1892, 1909 ते अधिनियम पारित किये, इसी बीच 1905 में कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके भारतीयों को एकजुट होने का अवसर दे दिया। भारतीय मनीषियों राजा राममोहन राय, स्वामी दयान्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद के द्वारा भारतीयों में स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के भाव जाग्रत किये जा चुके थे।

भारतीय नवजागरण (1857 ई. के विद्रोह के संदर्भ में)

भारतीय नवजागरण का आरंभ बंगाल से माना जाता है। यह नवजागरण ब्रिटिश शासन के प्रभाव से पूरे देश में फैला। इस नवजागरण में ही सुधारवाद, राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण का और आर्थिक विषमता से टकराता है तो समाजवादी सिद्धान्तों प्रचलित हुए। शंभुनाथ का कहना है कि- "विवेक कहीं जब धार्मिक रुढ़ियों से टकराता है तो राष्ट्रवाद का, प्राचीनता से टकराता है तो आधुनिकीकरण का और आर्थिक विषमता से टकराता है तो समाजवादी सिद्धान्तों का उदय और विकास होता है।.....भारत में नवजागरण की एक अन्तर्धारा सुधारवाद तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य को लेकर चल रही थी, नेतृत्व में थे राजा राममोहन राय .....भारत में नवजागरण की एक दूसरी धारा राष्ट्रवादी मुक्ति का लक्ष्य लेकर चल रही थी। संन्यासी, संथाल , भील , पोलिगार तथा कोल विद्रोह के भीतर से जिसकी अन्तिम परिणित हुई 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में।"[1] भारतीय नवजागरण का प्रमुख लक्ष्य साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से छुटकारा पाने के साथ राष्ट्रवाद भी बन गया था।यह परिवर्तन सुधारवाद के रुप में, हिंदी प्रदेश में पट्टी की यदि बात करें तो नवजागरण यहाँ साहित्य में दिखाई पड़ता है, सुधारवाद में कम। परन्तु अपने साहित्य के माध्यम हिंदी नवजागरण ने जो प्रभाव छोड़ा है, वह अद्वितीय है। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते हैं- "जिस प्रकार अन्य देशों के, अन्यत्र के नवजागरण एक बृहत्तर मानववाद या मानवतावाद के अग्रदूत रहे हैं, उसी प्रकार यह हिन्दी नवजागरण भी उस मानवतावाद का अग्रदूत रहा है।"[1]

इसी नवजागरण के परिणामस्वरुप भारतेंदु और उसके सहयोगी स्त्री शिक्षा , सर्व धर्म समभाव अंतर्जातीयता, सदाचरण का प्रचार कर रहे थे और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जाकर 'स्वत्व निज भारत गहै' का प्रसार फैला रहे थे। निःसंदेह ये 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरुप ही था।

1857 का विद्रोह यद्यपि असफल हो गया था, परन्तु इसकी अंतर्वस्तु इतनी मजबूत थी, जिससे अंग्रेजी शासन की नींव हिल गई थी। इन विद्रोहियों में बंगालियों सी प्रखर बुद्धि और विवेक ना सही, परन्तु साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ने का साहस अवश्य था। विद्रोह के साये में हिन्दु, मुस्लिम , सिक्ख किसानों ने एकजुट होकर उपनिवेश के विरुद्ध 'राष्ट्र' की धारणा खड़ी की। जिसके परिणामस्वरुप भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की जगह महारानी विक्टोरिया का शासन आ गया।

जिन पक्षों में हिंदी नवजागरण, बंगला के नवजागरण से भिन्न था वह पक्ष थे – 1. स्वभाषा, 2. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और 3. भारतीय जातियों की एकता। 1882 में बंरिमतन्द्र चटर्जी 'वंदे मातरम्' लिख रहे थे तो भारतेंदु ने 'अंग्रेज स्त्रोतं' लिखा। इकबाल ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' 20 वीं सदी के प्रारम्भ में लिखा, परन्तु 'अजीमुल्ला खाँ' ने 'हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा' 19 वीं सदी के उत्तरार्ध में लिख दिया था। सामयिक समस्याओं पर भी तत्कालीन लेखकों ने जमकर लिखा। 1870 में भारतेंदु द्वारा 'कविता वृद्धिनी' सभा की स्थापना की गई, जिसमें विभिन्न नाटक खेले जाते थे। काशीनाथ खन्नी का 'बाल-विवाह' और अम्बिका दत्त व्यास का 'गौ-संकट' इसी सभा द्वारा खेले गए।

प्राचीन काल से ही देश में राष्ट्रीय एकता रही है परन्तु आर्थिक , सामाजिक और राजनीतिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय चेतना 1857 के विद्रोह से पहले निर्मित नहीं हो पाई थी। राजाराम मोहन राय और भारतेंदु सरीखे नेताओं ने अपने अध्ययन और यात्राओं के जरिए नए अनुभव प्राप्त किये और उनके देशप्रेम में राष्ट्रवाद भी सम्मिलित हो गया। इस राष्ट्रवाद का उद्देश्य सुधारवाद था, साम्राज्यवाद से विरोध था, स्वदेशी उत्थान था और राष्ट्रीय एकीकरण था। कर्मेन्दु शिशिर का कहना है, "नवजागरण का ताप देश की किसी एक भाषा, एक जाति , एक समाज या विद्या में था – ऐसी बात नहीं । वह जगदीश चन्द्र बसु से भगत सिंह तक फैला हुआ था। वह तत्कालीन भारतीय भाषाओं के अलावा 'भारतीय अंग्रजी' में था और भोजपुरी जैसी तमाम बोलियों तक अभिव्यक्त हुआ था।"[1]

भारतीय नवजागरण भी रिनेसाँ से उद्धृत माना जाता रहा है। परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में नवजागरण की सैद्धान्तिकी दी है। उनकी इस पुस्तक की प्रथम पंक्ति "हिन्दी प्रदेश में नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरू होता है।"[1] हिन्दी नवजागरण का स्वरूप प्रस्तुत करती है। हिन्दी प्रदेश का समर्थन 1857 के विद्रोह से था। इसी बात को 'इरफान हबीब' इस तरह से कहते है, "अगर कहा जाए कि सिपाही विद्रोह 1857 के महाविद्रोह का मुख्याधार था तो उतने ही निश्चयपूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि इसका रुप इतना बड़ा नहीं हो पाता अगर हरियाणा से लेकर बिहार तक के आम नागरिकों की हार्दिक सहानुभूति न मिली होती। इन्हीं क्षेत्रों के गाँवों से इन सिपाहियों की भर्ती की गई थी। इस विशाल क्षेत्र में इस विद्रोह की रंगत अख्तियार कर ली थी।"[2] इससे पहले बंगाल के नवजागरण की चर्चा होती

थी, परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को एक विशेष सैद्धान्तिकी प्रदान की। उन्होने कहा है, "इस तरह जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य विरोधी, सामंत विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में और भी पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा इनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुई।"[3]

डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 के विद्रोह को नवजागरण की पहली मंजिल मानते हुए इसका संबंध हिंदी जाति से जोड़ा है। इस संग्राम की विशेषताएँ इस प्रकार से थीः-

1. " पूरे देश की एकता और एक सूत्रता की चिंता।
2. सामंत हित की चिंता के बजाय जनहित में राज्यसत्ता की मूल समस्या का निराकरण।
3. अंग्रेजी द्वारा जमींदारों, साहूकारों के प्रभुत्व को बढ़ावा देने की धारणा के प्रतिपक्ष में सामंत विरोधी धारणा को पुष्ट करने का ध्येय।
4. फौज में सिपाहियों, सूबेदारों के रुप में कार्यरत सर्वधर्म सकल वर्ग किसानों की अगुवाई में संग्राम।
5. सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त, कर्मनिष्ठ सैन्यदल का गठन।
6. हिंदी पट्टी में इस संग्राम की क्रियाशालता।"[1]

1857 के गदर को डॉ. शर्मा ने गौरवशाली गदर कहा है, क्योंकि इस गदर में सभी ने छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित सभी ने एकजुट होकर साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ी थी।

4.5 हिन्दी काव्य को भारतेंदु का अवदान

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु हरिश्चचंद्र एक साथ नाटककार, कवि, पत्रकार, निबंधकार, व्यंग्यकार, उपन्यासकार, कहानीकार और भी अनेक रूपों में उदित हुए। उन्हें हिंदी का पितामह माना जाता है क्योंकि उन्होंने एक पितामाह की तरह अपने समस्त सामाजिक , साहित्यिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों का निर्वाह किया।

हिंदी साहित्य के पितामाह

हिंदी नाटकों का सूत्रपात करने वाले भारतेंदु जी के जीवन पर नजर डालकर समझा जा सकता है कि 35 साल की छोटी उम्र में भारतेंदु ने हिंदी साहित्य में जो योगदान दिया है, वह बेजोड़ है। शुरुआत से देखें तो उन्हें स्कूली शिक्षा नहीं मिली। घर में ही भारतेंदु ने हिंदी, मराठी, बांग्ला, उर्दू और अंग्रेजी सीखी। पाँच साल की नन्हीं उम्र में बालक हरिश्चंद्र ने एक दोहा लिखा-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।

वाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान।।

उसी उम्र में भारतेंदु ने अपनी माँ को खोया था। 10 साल की उम्र में पिता का साया भी भारतेंदु के ऊपर नहीं था। 15 साल की उम्र में भारतेंदु ने विधिवत साहित्य सृजन शुरू कर दिया था और 18 की उम्र में उन्होंने 'कवि वचन-सुधा' नामक साहित्यिक पत्र निकाला, जिसमें अपने समय के शीर्ष विद्वानों की रचनाएँ प्रकाशित हुई। वे 20 वर्ष

की उम्र में साहित्यिक सभा के ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन के घटनाक्रमों को देखकर लगता है कि कोई साधारण युवा अपने माता-पिता को खोकर दिशाहीन हो सकता था परंतु भारतेंदु ने पूरे हिंदी साहित्य संसार को दिशा देने का कार्य किया। सन् 1873 में उनकी पहली गद्य कृति 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आई। इसी समय भारतेंदु ने विशाखदत्त के मशहूर ने भी इस नाटक का अनुवाद किया, लेकिन जो ख्याति भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद के महत्वपूर्ण तत्वों की परख थी। उन्होंने हर्ष रत्नावली, विद्या सुंदर, कर्पूर मंजरी, दर्लभ बंधू (शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद जो उनकी असामयिक मृत्यु के कारण अधूरा रह गया) के अनुवाद भी हिंदी साहित्य को दिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सत्य हरिश्चंद्र' (1875), 'श्री चंद्रावली' (1876), 'भारत दुर्दशा' (1876-1880 के बीच) , 'नीलदेवी' (1881) जैसे मौलिक नाटक भी लिखे। उनका एक साथ कई भाषाओं पर अधिकार था। 1973 में 23 वर्ष की आयु में अंग्रेजी में हरिश्चंद्र मैगजीन, हिंदी में हरिश्चंद्र पत्रिका और बालबोधिनी नामक तीन और पत्रिकाओं के मुख्य संपादक के रूप में हिंदी की सेवा शुरू की। हिंदी भाषा को वे राष्ट्रीय गौरव मानते थे-

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे ने हिय को शूल।।

4.6 भारतेंदु मंडल के कवि तथा अन्य कवि

भारतेंदु मंडल में भारतेंदु के पश्चात प्रतापनारायण मिश्र का प्रमुख स्थान है। प्रतापनारायण मिश्र प्रतिभा संपन्न निबंधकार थे। इनमें रचना क्षमता की अद्वितीयता विद्यमान थी। लेखन कला में इन्होंने भारतेंदु हरिश्चंद्र को अपना आर्दश स्वीकारा। फिर भी इनकी शैली में भारतेंदु की शैली से अत्यधिक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इन्होंने अनेक निबंध लिखे जिनमें प्रमुख निबंध हैं- 'नाखून क्यों बढ़ते है' ? 'मूँछ', 'भौ' , 'दांत', 'पेट' आदि शारीरिक अंगों पर लिखे गए निबंध। 'ट', 'त' जैसे वर्णमाला के अक्षरों पर लिखे गए निबंध। 'बेगार', 'रिश्वत', 'देशोन्नति', 'धर्म और मत', 'उन्नति की धूम', 'बाल विवाह', 'विलायत यात्रा', 'अपव्यय' आदि विषयों से संबंधित विचार प्रधान निबंध। 'न्याय', 'ममता', 'सत्य', 'स्वतंत्रता' आदि वैचारिक निबंध। कनातन का डौल बांधै, 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'वृद्ध', आदि कहावतों, लोकोक्तियों, सूक्तियों को शीर्षक बनाकर लिखे गए निबंध। इन्होंने कुछ नाटक भी लिखे, यथा – 'कलि कौतुक रूपक', 'कलि प्रभाव', 'हठी हमीर', 'गौ संकट', 'जुवारी खुवारी'।

पंडित बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों में प्रमुख रहे है। भट्ट संस्कृत के पंडित थे। अंग्रेजी साहित्य का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। तत्कालीन वैज्ञानिक प्रगति से वे पूर्णरूपेण अवगत थे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील व्यक्ति थे। भट्ट अपने विचारात्मक निबंधों के लिए प्रसिद्ध हैं।

उन्होंने छोटे-छोटे अनके निबंध लिखे ; यथा-'वायु', 'प्रकाश', 'धूमकेतु', 'पेड़', 'सीसा', 'वनस्तपति', 'विज्ञान', 'भूगर्भ निरूपण', 'पदार्थवाद' आदि वैज्ञानिक निबंध है। इन्होंने शारीरिक अंगों; यथा- 'आँख', 'कान' आदि पर निबंध लिखे। 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है' इनका प्रमुख निबंध है। 'प्रेम और भक्ति', 'तर्क और विश्वास', 'ज्ञान और भक्ति', 'विश्वास प्रीति', 'अभिलाषा', 'आशा', 'स्पर्धी', 'धैर्य', 'माधुर्य', 'आत्म त्याग', 'सुख क्या है ?' आदि इनके वैचारिक निबंध हैं। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा', 'माधुर्य', 'आत्मा त्याग',

'सुख क्या है?' आदि इनके प्रमुख वैचारिक निबंध है। 'सच्ची कविता', 'भाषा कैसी होनी चाहिए', 'उपमा उपयुक्त विशेषण और विशेष्य, 'खड़ी और पड़ी बोली का विचार', 'हिंदी की पुकार', आदि इनके साहित्यिक चितंन प्रधान निबंध है। इन्होंने- 'नूतन ब्रह्माचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' आदि उपन्यास भी लिखे।

बदरीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमधन' था। ये अपने नाम से पूर्व उपाध्याय भी लगाते थे। इन्होंने निबंध, कविता तथा नाटक को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इन्होने 'भारत सौभाग्य', 'वारांगना-रहस्य', 'प्रयाग समापन', 'वृद्ध विलाप' आदि नाटक भी लिखे।

अन्य कवि

लाला श्रीनिवास दास ने नाटक और उपन्यास लिखे थे। ये संसार को ऊँचा नीचा समझने वाले पुरुष थे। इन्होंने 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर' तथा 'रणधीर- प्रेम मोहिनी ' आदि नाटक लिखे। इन्होंने 'परीक्षा गुरु' नामक उपन्यास भी लिखा।

राजकुमार ठाकुर जगमोहन सिंह मध्य प्रदेश की विजय राघवगढ़ रियासत के राजकुमार थे। वे शिक्षा प्राप्त करने काशी चले गए। जहाँ इन्होंने संस्कृत एवं अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र से उनका संपर्क हो गया किंतु भारतेंदु की रचना शैली का प्रभाव उन पर वैसा नहीं पड़ा जैसा भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों पर पड़ा। वे संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञात तता हिंदी के एक प्रेम पथिक कवि एवं माधुर्यपूर्ण गद्य लेखक थे। 'प्रेम संपत्ति लता', 'श्यामा सरोजनी', एवं 'देवयानी' इनकी काव्य कृतियाँ हैं। इन्होंने 'श्यामा स्वप्न' नामक उपन्यास भी लिखा।

बाबू तोता राम- हरिश्चंद्र चंद्रिका के लेखकों में से हैं। ये आजीवन हिंदी के प्रचार एवं प्रसार में तत्पर रहे। इन्होंने भाषा संवर्धिनी सभा की स्थापना की। इन्होंने 'केटो कृतांत नाटक', 'स्त्री सुबोधिनी' का अनुवाद किया।

पंडित केशव राम भट्ट ने बिहार प्रांत में हिंदी प्रचार-प्रसार हेतु अनेक यत्न किये। इन्होंने 'शमशाद सौसन' तथा 'सज्जाद संबुल' नामक नाटक लिखे।

पंडित राधाचरण गोस्वामी में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के प्रभाव से सामाज सुधार एवं देशभक्ति का भाव जागृत हुआ। इन्होंने 'विदेश यात्रा विचार' तथा 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तकें लिखीं और भारतेंदु नामक पत्र निकाला।

अंबिका दत्त व्यास कविवर दुर्गा दत्त व्यास पुत्र थे। वे संस्कृत और हिंदी के अच्छे विद्वान थे तथा दोनों भाषाओं में साहित्य सृजन का कार्य करते थे। 'पावस पचासा', 'सुवकि सतसई' तथा 'हो हो होरी' इनकी काव्य कृतियाँ है। 'कंस वध'(अपूर्ण), 'ललिता नाटिका', नाटक लिखे । 'बिहारी विहार', 'अवतार मीमांसा' इनकी कुंडलियाँ हैं।

पंडित मोहन लाल विष्णुलाल पंड्या ने गिरती दशा में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' को सहारा दिया था तथा उसमें अपना नाम भी जोड़ा था। कविराज श्यामल दास जी ने जब अपने 'पृथ्वीराज चरित्र' ग्रंथ के द्वारा चंदवरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' को जाली ग्रंथ प्रमांणित किया, उस समय इन्होंने 'रासो संरक्षा' की रचना कर उसे प्रमाणित महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया था।

पंडित भीमसेन शर्मा दयानंद सरस्वती के दायें हाथ थे। संवत् 1940-1942 वि. के मध्य इन्होंने धर्म संबंधी अनेक पुस्तकेंहिंदी में लिखीं एवं संस्कृत ग्रंथों के हिंदी भाष्य भी प्रकाशित किये। इन्होंने 'आर्य -सिद्धान्त' नामक मासिक पत्र निकाला और 'संस्कृत भाषा की अद्भूत शक्ति ' निबंधि की रचना की।

पंडित दुर्गा प्रसाद मिश्र, पंडित छोटू लाल मिश्र , पंडित सदानंद मिश्र, बाबू जगन्नाथ खन्ना इन सभी के प्रयास से संवत् 1934 वि. में कलकत्ता में 'भारत मित्र कमेटी' की स्थापना हुई तथा 'भारत मित्र' पत्र निकला। इसका बहुत दिनों तक हिंदी संवाद पत्रों में उच्च स्थान रहा।

राधाकृष्ण दास भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। इन्होंने कविता के अलावा नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्रों में सराहनीय साहित्य रचना की। इन्होंने 'भारत बारह मासा', 'देश दशा ' नामक कविताओं और 'दुःखिनी बाला', 'महाराणा प्रताप' नामक नाटकों की रचना की।

4.7 काव्य भाषा का संघर्ष और भारतेंदु युग

भारतेन्दु युगीन काव्य भाषा के संघर्ष पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह युग अपने पूर्ववर्ती युग से कुछ ग्रहण कर रहा था तो परवर्ती युग के लिए प्रेरणास्रोत बनने का प्रबल आकांक्षी था। उस युग के साहित्यकारों का दृष्टिकोण बहिर्मुखी था तथा उसमें सामाजिक चेतना उद्बुद्ध थी, किंतु उस युग के साहित्य में प्रौढ़ता अपेक्षाकृत कम थी। उस युग के गद्य का स्वरूप गोष्ठियों तक सीमित रहा।

इस काल में भाषा संबंधी जो महान विवाद खड़ा हुआ उसका प्रतिनिदित्व पत्र-पत्रिकाओं ने भी किया। इस काल में प्रकाशित होने वाली 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी निबंध भी छपते थे, इनके माध्यम से नवशिक्षित अंग्रेजी बाबुओं की खिल्ली उड़ाई जाती थी। बाद में हरिश्चंद्र मैग्जीन का नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' रखा दिया गया। इस पत्रिका में भाषा संबंधी आंदोलन को विशेष स्थान मिलता था।

भारतेंदु युग में कविता क्षेत्र में ब्रज भाषा का प्रयोग होता रहा और गद्य क्षेत्र में खड़ी बोली का। आलोचकों का कहना है कि भारतेंदु तथा उस काल के कुछ अन्य कवियों ने खड़ी बोली में भी पद्य रचना करनी चाही, किंतु वे सफल नहीं हो पाए। निर्जीव तुकबंदियाँ ही बन पड़ी हैं। ब्रज भाषा में अपेक्षा कृत इनकी कविताएँ मार्मिक बन पड़ी हैं। ब्रज भाषा या खड़ी बोली में भारतेंदुकालीन लेखकों ने सामयिक विषयों पर जो पद्यात्मक रचनाएँ लिखी उन्हें कविता की कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि उनमें राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विचारों को ज्यों का त्यों छंद-पद्ध करके रखने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। उनमें कोई मार्मिक अनुभूति और कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं है। केवल तुकबंदी कविता नहीं कहला सकती।

इस काल के प्रमुख पत्र 'भारतमित्र' ने लिखा था, "हम लोगों की हिंदी भाषा है, यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है तथापि संस्कृत का अखंड भंडार इसकी समृद्धि वृद्धि करे हैं और जो इसमें कहीं-कहीं सूरसैनी, मागधी, माथुरी, फारसी, अरबी और अंग्रेजी भी सरल भाव से अलंकृत करती हैं। परंतु ऐसा कहने से यह नहीं समझना कि अब

हम अरबी, ईरानी, तुर्की और यूनानी आदि से हिंदी को ढांक दें और मूल में आघात करें। इन सब भाषाओं के शब्द तो वो ही रखने चाहिए जो सब कि इसमें मिल गए हैं।"

4.7 भारतेन्दु युगीन कविता की मूल चेतना और विशेषताएँ

भारतेंदु युग में एक और प्राचीन काव्य प्रवृत्तियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो रही थीं और दूसरी ओर आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों उदित हो रही थीं। इस दृष्टि से यह दोनों का संधिकालिक युग है। यही कारण है कि परंपरागत काव्य रचना का आवेग एं स्वर इस काल में भी प्रभावी है और साथ ही आधुनिक काव्य का नवीन स्वर भी सुनायी देता है। जन-जागरण और देशप्रेम इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी। इसीलिए सभी रचनाकारों ने अपनी काव्य रचना में इस प्रवृत्ति को प्रमुखता से उभारा है। भारतेंदु जैरो रचनाकार तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से भी पूरी तरह परिचित थे। इसीलिए स्वाभाविक था कि उनके काव्य में वे समस्याएँ प्रमुखता से उभकर आई। भारतेंदुयुग के रचनाकार हमारे सामने एक साथ साहित्यकार पत्रकार और समाज सुधारक के रूप में आते है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों , समस्याओं एवं विषमताओं को इस काल के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से उभारा है। भारतेंदु और उनके मण्डल के साथी अपने युग और समाज के प्रति कितने जागरूक और सजग थे कि उनकी दृष्टि सामाजिक विषमताओं की ओर बहुत गहराई से उठी है। समाज की प्रचलित कुरीतियाँ, शोषण, नारी उत्पीड़न पाश्चात्य कुप्रभाव दिखाया, पुलिस अत्याचार, जनता की लूट-खसोट, कोर्ट-कचहरी का अन्याय एवं इसी तरह के अपने युग की परिस्थितियों और समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे। इसके साथ ही वे अपनी संस्कृति तथा अपने गौरव को भी विस्मृत नहीं कर सकते थे। इसीलिए उनके काव्य में भारतीय सांस्कृतिक गौरव की विस्तृत झाँकी परिलक्षित होती है। इस युग के रचनाकारों ने रीतिकाल की श्रृंगारिक काव्यपरंपरा का भी सम्यक् सत्कार किया जिसके कारण श्रृंगार रस की रचनाओं का बाहुल्य भी इस काल में दिखायी देता है। क्षीण ही सही भक्ति और शांत रस की धारा भी इस काल में प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इसी रचनावैविध्य से भारतेंदु युग की काव्य प्रवृत्तियों का भी परिवेश निर्मित होता है। इस युग की इन समस्त प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह महत्वपूर्ण टिप्पणी की है "अपनी सर्ववोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई देते हैं, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल म्धुसूदन और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नए भक्तिमाला गूँथते हुए दिखाई देते है, दूसरी मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते हैं। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचान अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ। इसमें संदेह नहीं।"

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने काव्य में आधुनिक एवं प्राचीन दोनों तत्वों को इतनी खूबी के साथ प्रस्तुत किया है कि देखकर आश्चर्य होता है। किसी युग का प्रवर्त्तन करने के लिए आवश्यक है कि युगप्रवर्त्तक न केवल नवीन प्रवृत्तियों से परिचित हो हो वरन वह अपने प्राचीन राष्ट्रीय –सांस्कृतिक गौरव से भी पूरी तरह अवगत हो। साथ ही उसमें ऐसी क्षमता हो कि अपनी भावनाओं को आम जन में बहुत सहजता, सरलता एवं प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सके। भारतेंदु हरिश्चंद्र में यह विशेषता कूट-कूटकर भरी हुई थी। इसीलिए वे अपने युग का

नेतृत्व करने में सफल हो सके। अपने गुणों एवं विशेषताओं के कारण उन्होंने अपने युग के रचनाकारों को प्रेरित किया, उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें एक कुशल नेतृत्व प्रदान किया।

भारतेंदुयुग में भारतेंदु के साथ अन्य जो कवि काव्य रचना में लगे हुए थे, उनमें प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास , वद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहन सिंह के नाम प्रमुख है। इन सभी कवियों की कविताओं पर भारतेंदु का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन सभी कवियों ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, समस्याओं, राष्ट्रीय भावनाओं , सामाजिक सुधार, देश-प्रेम आदि को अपने काव्य में स्थना दिया है। उद्दीपक प्राकृतिक एवं श्रृंगारिक रचनाओं का भी सम्यक सत्कार करते हुए इन कवियों ने ब्रजभाषा के साथ-साथ खड़ीबोली को भी महत्व प्रदान किया है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि भारतेंदु एवं उनके साथी कवियों की काव्य रचनाएँ समान प्रवृत्तियों पर आधारित है। यहाँ शिवकुमार शर्मा की टिप्पणी विशेष दृष्टव्य है "भारतेंदुकालीन कविता के विकास में भारतेंदु , प्रतापनारायण मिश्र , अंबिकादत्त व्यास,राधाकृष्णादास और वद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' का नाम उल्लेखनीय 'नीलदेवी' नामक नाटकों के गीतों में तथा अन्य स्वतंत्र कविताओं में भारत की हीन दशा का वर्णन किया। आवहु राय मिली रोवहु भारत भाई, हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई।" इनकी कविता में कहीं देश के अतीत गौरव की गर्वगाथा है, तो कहीं वर्त्तमान अधोगित की क्षोभभरी वेदना और कहीं भविष्य की कामना से जगी हुई चिंता। कही भक्ति के पद, कहीं श्रृंगार रस के कवित्त और सवैंये कहीं उपदेश और सूक्तियों तो कहीं उत्सव का वर्णन है। भारतेंदु जी ने हिंदी कविता को नवीन विषयों की ओर अग्रसर किया, किन्तु उसमें किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। दूसरे, प्रकृति वर्णन के प्रसंगों में उनका मन जितना नर प्रकृति के वर्णन में रमा है, उतना बाह्य प्रकृति के वर्णन में नहीं। उनके मंमा वर्णन में नागरिकता की अधिकता है, प्रकृति के सहज सौष्ठत की झाँकी है।"

भारतेंदु युगीन काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

इस काल के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों निम्नवत् रेखांकित की जा सकती हैं

देशभक्ति अथवा राष्ट्रप्रेमः- भारतेंदु का काल राजनीतिक दृष्टि से वह समय है जब देश में स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था। विदेशी आक्रांताओं से त्रस्त भारत का जनमानस गुलामी की मानसिकता से मुक्त होना चाहता था। मुक्ति की यही आकांक्षा उस काल के कवियों में प्रखर देशभक्ति और व्यापक राष्ट्रप्रेम के रूप में मुखरित हुई। राष्ट्र प्रेम की भावन जन-जन में फैलाना इस काल के कवियों ने अपना महत्त लक्ष्य निर्धारित किया था। तत्कालीन विषम राजनैतिक परिस्थितियों में अपना काम निकालने के लिए नम्र नीति का पालन करते हुए इस काल के कवियों ने कहीं न ही राजशाही की प्रशंसा बल्कि इसके पीछे भारतीय समाज का कल्याण भाव ही छिपा हुआ है।

राजभक्ति का उदाहरण भारतेंदु की एक कविता में इस तरह देखा जा सकता है-

'परम मोह फल राजपद दरसन जीवन माहिं।
बृटन देना राजसुत पद पररहुँ चित्त चाहिं।'

लेकिन इन सभी कवियों ने भारत के हित व सुख की मंगल कामना भी प्रकट की है। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के शब्दों में-

'करहुँ आज सो राज आप केवल भारत हित
केवल भारत के हित साधन में दीने चित्त।'

भारतेंदु जी को अपने देश की गौरवपूर्ण संस्कृति व स्वरूप से बहुत प्रेम था। अतः उन्होंने देश में हो रहे अत्याचारों के प्रति अपनी रोप भरी आवाज उठाई-

'अंग्रेज राज सुख साज सबे सुखकारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।'

भारतवासी पराधीन है। भारतमाता की इस दीन व क्षीण अवस्था को देखकर भारतेंदु जी व उनके कवि मण्डल का हृदय से पड़ा। उन्होंने भारत की दीन स्थिति को सुधारने के लिए देवताओं से भी प्रार्थना की।

'कहां करुनानिधि केशव सोए
जानत नाहि अनेक जतन करि भारतवासी रोए।'

ये कवि विदेशी माल का प्रयोग करने के पक्षपाती नहीं थे, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने के पक्षपाती थी। उनकी राष्ट्रीय भावना अनेक रूपों में प्रस्तुत होती है। वे भारतवासियों की इस हीन भाव का विरोध करते हैं-

'मारकीन मलमल बिना चलत कचु नहीं काम
परेदशी जुलहन के मानहु भए गुलाम।'

कुछ विद्वानों ने भारतेंदु कालीन राष्ट्रीय भावना की आलोचना की है। उसको संकीर्ण व चादुकारिता से पूर्ण बताया है। वास्तव में भारतेंदु जैसे सच्चे राष्ट्रभक्त का कदापि यह तात्पर्य नहीं था कि भारतेंदु इत्यादि कवियों के हृदय में सच्ची राष्ट्रभक्ति का अभाव है, बल्कि वे पूर्ण रूप से राष्ट्रभक्त, एवं सच्चे समाज सुधारक थे।

समाज सुधार एवं जन जीवन का चित्रण-भारतेंदु ने बहुत स्वाभाविक रूप में किया है, क्योंकि वे एक सच्चे जागरूक साहित्यकार थे। अतः उनकी कविता में समाज सुधार की सशक्त भावना मिलती है। यह समाज का कल्याण करना चाहते थे। उन्होंने अनपे युग की प्रवृत्तियों व समस्याओं का चित्रण किया है, परंपरागत अंध-विश्वासों का खण्डन किया, कवि ने अपने युग में फैली सभी कुरीतियों पर घोर कुठाराघात किया। अपने देश के वासियों को उन कुरीतियों के बुरे परिणामों से अवगत करवाया है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, "भारतेंदु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में हैं कि यह भारतीय समाज में पुराने ढाँचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है। यह केवल राजनैतिक स्वाधीन का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता समता और भाई-चारे का भी साहित्य है। भारतेंदु, स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश यात्रा आदि के समर्थक थे। इससे भी बढ़कर बात यह थी कि भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने बड़ी आलोचना की।" भारतेंदुजी ने यद्यपि सामाजिक पुनरुस्थान की बात कही, लेकिन वह अपने देश की परंपरा को बिल्कुल त्यागना नहीं चाहेत-

'लोग क्रिस्तान भए जाथै बल थे साहब

कैसा जब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा
पढ़े जनम तै फारसी, छोड़ वेद मारग दिया,
हा हा हा विधि वाम ने सर्वनाश भारत कियो।'

भारतेंदु ने अपने समय की प्रचलित सभी रुढ़ियों का विरोध किया। अछुत्तोद्धार, स्त्री-शिक्षा इत्यादि को प्रेरणा दी। मानवतावादी धर्म को प्रचलित किया। आर्य समाज की समस्त विचारधाराओं का प्रस्फुटन भी भारतेंदुजी के साहित्य व काव्यों में स्पष्ट रूप से हुआ है। उन्होंने भारत की वैदिककालीन रीति व धर्म को प्रश्रय दिया। विदेशी विचारों के सार तत्वों का समन्वय किया। इस प्रकार उनका काव्य बहुत ही स्वस्थकारी बन गया, जिससे युग को काफी शक्ति मिली।

प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय

भारतेंदु एक ऐसे चौराहे पर खड़े थे जो एक संधि स्थल था, पुरातनता का, व नवीनता का। यह वह युग था जब समाज व काव्य नवीन प्रवृत्तियों से युक्त भी होता जा रहा था अभी भी परंपरागत व प्राचीन परंपराओं का प्रभाव अवशिष्ट था। जहाँ कविता के भावपक्ष व कलापक्ष में ऐसे अनेक नवीन तत्वों का समावेश हुआ, यहाँ उसमें परंपरागत, सांस्कृतिक व धार्मिक गौरव का भी योग रहा। मानवतावादी भावना व देशप्रेम की भावना के साथ इन कवियों ने अपनी ईश्वर संबंधी आस्था प्रकट की है। यद्यपि इस प्रकार की रचनाओं में रूढ़िबद्धता व परंपराबद्धता है, कहीं-कहीं नख-शिख वर्णन भी मिलते हैं। उनकी ऐसी कविताओं में देव व पदगाकर के काव्य की सी श्रृंगारिकता मिलती है-

'माजि रोज रंग के महत्व में उमंग भरी
पिय गर लागी काम कराक मिटाय लेत।'

भक्ति के पदों में उनका भक्त हृदय पुकार उठता है-

'ब्रज के लता पता मोहित कीजो
श्री राधे यह वर मुँह मांग्यो वर दीजै।'

प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण

इस युग के कवियों में प्रकृति का संश्लिष्ट व स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। ये कवि चूँकि समाज सुधारक, पत्रकार, इत्यादि थे, अतः इनके पास पर्याप्त अवकाश नहीं था, को भी प्रकृति के एक-एक अंग की विवेचना करने का। ये प्रकृति चित्र परंपरागत है। इनमें भी प्रकृति का उद्दीपनगत वर्णन है। इन कवियों की रूचि नर प्रकृति वर्णन में थी, प्रकृति वर्णन में जो कलात्मकता व संवेदनशीलता मिलती है, उनका सर्वथा अभाव इन कवियों के प्रकृति चित्रण में है।

इतिवृत्तात्मकता एवं नीरसता

कवि समाज सुधारक होने के कारण इन कवियों की कविता में अनुभूति की तीव्रता, कल्पना की उदारता व संप्रेषणीयता का अभाव है। नवयुग की अभिव्यक्ति करनेवाली यह कविता कलात्मक नहीं हो सकती। डॉ.

केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में, "इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का कारण इस उत्थान में विचारों का संक्रांति काल होना है। फिर जनता की मनोवृत्ति भी बदलनी थी, उस पर प्रेम गीतों का प्रभाव हटाना था, ये कवि अपनी सामयिक समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक थे। इसीलिये उसी का यथार्थ विवेचन करने व समाधान ढूँढने में लगे रहने के कारण इनकी कविता में इतिवृत्तात्मकता व नीरसता मिलती है। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान है।"

भाषा

इन कवियों ने पद्य के क्षेत्र में चली आती हुई ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। यद्यपि खड़बोली में भी काव्य रचना का क्रम शुरु हो गया था तथापि वह अभी बिल्कुल साहित्यिक व कलात्मक नहीं था। इस युग के कवियों ने खड़ीबोली में भी पद्य रचना की। श्रीधर पाठक की कविता देखें-

'वदनीय वह देश, जहाँ के देशो निज अभिमानी हों
मानवता में बंधे, द्वेप परता के अज्ञानी हो।'

खड़ीबोली का कितना भी प्रचार उस युग में था बावजूद इसके इस काल के कवियों ने ब्रजभाषा के प्रति विशेष आकर्षण दिखलाया। ब्रजभाषा के सौंदर्य पर वे इस कदर मोहित थे कि श्रीधर पाठाक जैसे कवियों को कहना पड़ा 'ब्रजभाषा सरीखी' रसीली वाणी को कविता के क्षेत्र से बहिष्कृत करने का विचार केवल उन हृदयहीन सरिकों के हृदय में उठना संभव है जो इस भाषा के स्वरूप ग्रहण से शून्य, उसकी सुधा के आस्वादन से बिल्कुल वंचित है। भारतेंदुकाल के प्रत्येक कवि पर इसकी काफी प्रभाव था। ब्रजभाषा में बहुत ही सुंदर काव्य रचा गया।"

छंदो का प्रयोग

छंद प्रयोग की दृष्टि से भारतेंदुकाल में कोई विशेष नवीनता, मौलिकता दृष्टिगत नहीं होती। अधिकतर कवियों ने परंपरागत छंदो में ही अपनी रचनाएँ की है, जिनके अंतर्गत सवैया, रोला, छप्पेय, कवित, लावनी, कजरी आदि छंद प्रमुख है। अपनी भावनाओं को जन-जन और लोकजीवन से जोड़ने के कारण अनेक कवियों ने लोकगीत और संगीत की तर्ज पर ठुमरी , कहरवा, खेमटा, चैती, होली, लावणी, विरहा आदि लोक-छंदों को अपनाया है। कतिपय कवियों ने संस्कृत के वर्णिक छंदो को भी लिया है।

कहा जा सकता है कि भारतेंदु मण्डल के साहित्यकारों ने साहित्यिकता के संरक्षण और काव्यत्व के अनुरक्षण का पूर्ण प्रयास भले ही न किया हो, उनकी कला का पूर्ण विकास भले ही दृष्टिगत न होता हो, लेकिन आगे विकसित होने वाली काव्य परंपरा की सुदृढ़ आधारशिला भारतेंदुयुग में स्थापित हुई। इस काल की साहित्य रचना का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व अक्षुण्ण है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भारतेंदुयुग की काव्य रचना आगे आनेवाले कवियों को प्रेरित करने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी है।

संक्षेप में इस काल की विशेषताओं को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है-

- भारतेंदु ने आधुनिक हिंदी कविता का समारंभ कर हिंदी काव्य के क्षेत्र में नवीन युग का सूत्रपात किया।

- उन्होंने न केवल स्वयं तत्कालीन अपेक्षाओं के अनुरूप साहित्य सर्जित किया, अपितु अपने सभी साहित्यकार मित्रों को भी समसामयिक विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने युग का नेतृत्व करने के कारण उन्हें युग- प्रेरक, युग निर्माता के रूप में जाना जाता है।
- जन जागरण और राष्ट्रीय भावनाओं के पोषण में भारतेंदुयुग अग्रणी रहा है।
- तत्कालीन सामाजिक बुराइयों अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, असमानता, भेदभाव आदि के विरुद्ध इस युग में आवाज उठाई गई।
- साहित्य की लगभग सभी विधाओं में इस युग के रचनाकारों ने कलम चलाई।
- राष्ट्रीय स्वाभिमान, देशप्रेम, सामाजिक सुधार इस काल की रचना के प्रमुख विषय बने।
- यद्यपि अधिकतर ब्रजभाषा का प्रयोग इस काल में हुआ पर खड़ीबोली का आरंभ भी हो गया था।
- लोक शैली के माध्यम से लोकजीवन पर मजबूत पकड़ इस काल के रचनाकारों ने बनाई।
- इस काल की साहित्य- रचना ने अपने आगे आने वाले युग को प्रेरित करने का कार्य किया।
-

4.9 सारांश

आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते समय हम पाते हैं कि इस युग में जीवन और साहित्य दोनों में 'आधुनिकता' का समावेश हुआ है। यही कारण है कि साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिंदी साहित्य के इस काल को 'आधुनिक' कहा। इसकाल में हमारे देश का संपर्क पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, भाषा, जीवन-पद्धति, राजनीति , शासन-व्यवस्था और विज्ञान से हुआ तथा तत्कालीन साहित्य में भी इन तत्वों का समावेश स्वाभाविक रूप से होने लगा। लगभग दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन ने भारत में परिवर्तन के ऐसे दृश्य उपस्थित कर दिए , जिनकी कल्पना भी नहीं की गई थी। हिंदी जगत ने पश्चिमी जगत के जीवन मूल्यों वाली सभ्यता-संस्कृति, भाषा और भौतिक विज्ञान की शक्ति को चुनौती के रूप में खड़ा पाया। हिंदी जगत ने इन नयी परिस्थितियों को देखा, समझा, संघर्ष भी किया और उनसे समझौते का मार्ग भी अपनाया।

आधुनिक काल के साहित्य में जनचेतना के स्वर प्रबल रूप से सुनाई देते है। भक्तिकाल का धर्म इस समय इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन गया था। लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा। धर्मसुधारकों ने भी धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। दयानंद सरस्वती एवं राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने तर्क और प्रमाण के आधार पर समाज सुधार कर कुरीतियों के निवारण का प्रयास किया। परिणामतः देशवासियों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की माँग को स्वर दिया। इस युग में हिंदी भाषा और साहित्य को भी नयी दिशा मिली। मुद्रणकला की आधुनिक दृष्टि से इस युग का साहित्य तेजी से तथा नये रूप-रंग में आगे बढ़ा। देश में उभरती हुई राष्टीय चेतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ। देश की सभी भाषाओं में साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया, देश को एकसुत्र में बाँधने का भी कार्य किया। देश में नवजागरण लाने वाले समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा मुद्रणालयों की इस भूमिका को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

हिंदी भाषा जन-समूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी को हिंदीभाषी जनता के नवजागरण का सांस्कृतिक माध्यम बनाने और सरकारी स्तर पर हिंदी को यथायोग्य स्थान दिलाने का संघर्ष भी उस समय हुआ।

हिंदी साहित्य के इतिहास में भारतेंदु जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकार के व्यक्तित्व के कारण भारतेंदु युग हिंदी साहित्य में प्रमुख स्थान रखता है। साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का समावेश करने का श्रेय भारतेंदु जी को ही है। आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्तन एवं इसके विकास की आधार भूमि का निर्माण इसी युग में हुआ। भारतेंदु युग के साहित्यकारों ने साहित्य को जन साधारण की वाणी बनाया तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रवादी भावनाओं का विकास किया।

छायावाद की परिस्थितियाँ भी विचित्र थीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थितियाँ बदल रहीं थीं। गांधीजी का आंदोलन उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मजदूरों के बीच फैल गया। दासता से मुक्ति की भावना जनता में फैल चुकी थी। राष्ट्रवाद और देशप्रेम की भावना अपने चरम पर थी। जाति, धर्म के भेदभाव कम हो रहे थे। पुनर्जागरण ने न केवल यूरोप वरन् भारत को भी प्रभावित किया। मुक्ति की इच्छा में छटपटाते भारतीयों में एक नये उत्साह और नयी उमंग का संचार इन कवियों ने किया। कीट्स, बायरन, बड्र्सवर्थ, कॉलरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने-समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

इस प्रकार आधुनिक काल साहित्यिक विविधताओं से परिपूर्ण रहा। स्वाधीनता संघर्ष और भारतीय नवजागरण के बीच तत्कालीन साहित्यकारों-संत गंगादास एवं भारतेंदु से लेकर द्विवेदी जी के भाषा-सुधार के प्रयासों का साक्षी रहा। यह यगु प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की लेखनी से निकले छायावादी बिंबों को लेकर बड़े ही समृद्ध रूप में प्रस्तुत हुआ है।

इकाई 5 : उत्तर छायावादी काव्यान्दोलन एवं गद्य चेतना

5.0 परिचय

प्रस्तुत इकाई में उत्तर छायावादी युग में सृजित काव्य एवं गद्य के स्वरूप का अध्ययन किया जाएगा। छायावादी काव्य की समाप्ति के बाद लिखी गई कविताओं में लौकिक समाज के बिम्ब एवं संवेदना, वैयक्तिक गीति काव्य और राष्ट्रीयता के स्वर ध्वनित होते सुनाई दिये मगर

यह स्थिति अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह पाई, समाज में परिवर्तित होती स्थितियों के साथ काव्य के स्वर भी परिवर्तित होते चले गए। उत्तर छायावाद में सौन्दर्योपासना, मानवता के प्रति आस्था, नारी-प्रेम, भक्ति और आराधना आदि बिन्दु समान हैं । बदली है तो अभिव्यंजना

प्रणाली। इस युग की कविताएँ स्वतंत्रता की चेतना, राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष और स्वतंत्रता के उपरांत उन्मुक्त उल्लास में रची गयी हैं।

सम्पूर्ण पृष्ठभूमि पर विचार करने पर यह पता चलता है कि देश में स्वतंत्रता को लेकर जनता ने जो सपने देखे थे आजादी मिलने के पश्चात उससे मोहभंग हो गया। समकालीन कवियों के काव्य में यह मोहभंग का अवसाद दिखने लगा है। सं 1960 ई. के बाद की पीढ़ी इलियट, पाउंड और बीटल कवियों से प्रभावित हो रही थी। सं 1960 ई. के बाद अस्वीकृति,निषेध और मोहभंग का प्रसार होने लगा। इस मोहभंग को अमृता प्रीतम, जाँनिसार अख्तर जैसे अनेक कवियों ने महसूस किया और अपने काव्यों के माध्यम से अभिव्यक्त किए। हिन्दी की अकविता, बांग्ला की क्षुधातर पीढ़ी और मराठी का दलित साहित्य जैसे अनेक आंदोलन उठ खड़े हुये। अतः कहा जा सकता है कि इस युग की काव्य धारा में जो साहित्य रचा गया वह आम जनता का साहित्य था। मोहभंग को साहित्य में दर्शाया गया।

5.1 इकाई के उद्देश्य

- उत्तर छायावादी काव्य के स्वरूप का विवेचन करना।
- प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी काव्य प्रवृतियों का विश्लेषण करना।
- प्रगतिवाद और प्रयोगवाद को परिभाषित करना।
- नयी कविता एवं नवगीत की विशेषताओं का वर्णन करना।
- समकालीन कविता एवं अन्य काव्य परिवर्तनों की पहचान करना।
- दलित चेतना, स्त्री चेतना तथा जनजातीय चेतना की कविताओं का मूल्यांकन करना।

5.2 उत्तर छायावादी काव्य का स्वरूप

उत्तर छायावादी युग संक्रमण का युग रहा। साहित्य के क्षेत्र में यह युग एक नए आंदोलन की शुरूआत कर रहा था । उत्तर छायावादी काव्य छायावाद के अंत और प्रगतिवाद के आरंभ का समय है। उत्तर छायावादी काव्य छायावाद का विकसित रूप है। छायावाद की अंतिम सीमा 1936 ई. मानी गई है। अतः 1936 ई. के बाद से उत्तर छायावाद युग का प्रारम्भ होता है। उत्तर छायावादी काव्य में राष्ट्रीय-अस्मिता, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक-गौरव, प्रकृति प्रेम और वैयक्तिक अनुभूतिजन्य रचना की प्रधानता रही । प्रेम और मस्ती की रचनाएँ खूब हुईं, जो कि सकारात्मक भावनाओं का संचार करती रहीं । उत्तर छायावादी युग में तीन प्रकार का साहित्य रचा गया -

- **परिवेशगत संवेदना से युक्त काव्य एवं लौकिक काव्यधारा :** इस काव्यधारा के कवियों की श्रेणी में पंत, निराला और महादेवी आदि प्रमुख हैं । इन कवियों ने लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य की रचना की है।

व्यक्तिनिष्ठा एवं वैयक्तिक गीति काव्यधारा : वैयक्तिक गीति काव्य धारा के कवियों में हरिवंश राय बच्चन, नरेंद्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भगवती चरण वर्मा, शंभुनाथ सिंह, गोपाल सिंह नेपाली, आरसी प्रसाद सिंह आदि प्रमुख कवि हैं।

- **ओजपूर्ण एवं राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा :** इस काव्यधारा के अंतर्गत मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, श्यामनारायण पांडेय आदि कवि को रखा जा सकता है।

5.3 प्रमुख छायावादोत्तर कवि और उनकी रचनाएँ

प्रमुख छायावादोत्तर कवियों में पंत(स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, युग-पथ), निराला(अनामिका, परिमल ,गीतिका), महादेवी(नीरजा, यामा, संध्य-गीत, दीप शिखा), हरिवंश राय बच्चन (निशा-निमंत्रण, एकांत-संगीत, मिलन-यामिनी), नरेंद्र शर्मा(प्रभातफेरी, प्रवासी के गीत, पलाश वन, कामिनी), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'(मधुलिका, अपराजिता, किरण बेला, वरर्षांत के बादल), माखनलाल चतुर्वेदी (द्वापर, सिद्धराज,जय भारत, बिष्णुप्रिया), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'(कुंकुम, रश्मि रेखा, अपलक, क्कासि), रामधारी सिंह(रेणुका, हुंकार, रसवंती, द्वंद्वगीत), 'दिनकर'गोपाल सिंह नेपाली(पंछी, रागिनी, उमंग), भगवती चरण वर्मा(प्रेम-संगीत, मानव, एक दिन), आरसी प्रसाद सिंह(कलापी, जीवन और यौवन, नई दिशा) तथा सियारामशरण गुप्त (मृण्मयी, उन्मुक्त, दैनिकी) आदि कवियों को शामिल किया जा सकता है।

5.3.1 लौकिक एवं संवेदनायुक्त काव्य : लौकिक काव्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जो लोक संवेदना से उपजकर उसका संचयन और प्रकटीकरण करता है। इसके साथ ही वह लोक जीवन से अविच्छिन्न रहकर लोक का कंठहार बना रहता है।

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला :- छायावाद से हटकर निराला के गीत संभावनाओं से निर्मित हैं। उनके गीतों में लोकोन्मुखता की शक्ति का विकास होता गया। उनका लोकोन्मुख व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही उनकी छायावादी कविताओं में रहा। निराला का जीवन संघर्ष का असर उनकी लेखनी पर भी पड़ा । उन्होंने प्रेम-सौन्दर्य के साथ जीवन के अन्य अनुभवों को भी समेटा । वे व्यक्तिगत प्रणय के साथ लोकजीवन के सुख-दुख, संघर्ष और यातना को भी गहराई के साथ चित्रित करते रहे। अतः उनकी व्यक्तिगत प्रणयानुभूति भी लोक-गंधित उभार लाती है। उनके लोकोन्मुखता की

प्रवृति दो रूपों में सामने आई - (क) छायावाद से भिन्न प्रगतिवादी कविताएँ लिखना और (ख) छायावादी काव्यधारा को और अधिक लोकोन्मुख करना ।

ध्यातव्य है कि प्रगतिवादी कवियों की कविताओं में छंद, भाषा और भाव सभी छायावाद की दृष्टि से मुक्त हैं। इस प्रकार की कविताओं में 'कुकुरमुत्ता', 'गरम पकौड़ी', 'प्रेम-संगीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नए पत्ते' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त कविताओं की भाषा लोक भाषा है तथा शैली और मुहावरे भी लोक के हैं। निराला इस बात से अवगत थे कि लोक जीवन के लिए उसकी भाषा आवश्यक होती है, लोक जीवन के भाव, दृश्य और व्यापार के साथ उसकी भाषा विशेष महत्त्व रखती है ।

निराला ने छायावादी कविता 'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना' आदि स्वानुभूतिपरक गीत लिखने के साथ-साथ विविध क्षेत्रों के व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं जैसे - 'विजयलक्ष्मी पंडित', 'प्रेमानन्द जी', 'संत रविदास', 'प्रसाद जी', 'महात्मा बुद्ध' आदि। ये गीत कई तरह के है - प्रेम की संवेदना, प्रार्थनापरकता और मानवीय संवेदना आदि के गीत की अभिव्यक्ति हुई है। निराला की यह विशेषताएँ 1938 ई. से पूर्व की कविताओं में दृष्टिगोचर होती हैं । उनका अनुपात थोड़ा सा भिन्न अवश्य है। 'तुलसीदास' उत्तर छायावाद की इनकी विशिष्ट देन है, जिसमें भारत को सांस्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का दृढ़ संकल्प है। लोकवादी कविताएँ निराला की इस अवधि की नयी देन हैं। इन कविताओं में ठहराव को तोड़ने की शक्ति है जो जन जीवन को समग्र रूप से जोड़ती है। इस अवधि की कविताओं में निराला की जीवनानुभूति है, उसमें टूटन और पराजय की प्रधानता है जो कि भक्ति की ओर अग्रसर करती है। कवि का असंतुलित मानस प्रेम, भक्ति, खुलेपन और उलझाव कुछ ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है कि कविताएँ उस उलझाव से ग्रसित सी प्रतीत होती हैं। गौरतलब है कि निराला ने संवेदना और अनुभव के द्वारा जनजीवन को ग्रहण किया है । इसी वजह से जनजीवन समस्त संवेदना के साथ उनके काव्य में उभर कर आया ।

सुमित्रानंदन पंत :- उत्तर छायावाद युग के काव्य-साहित्य में देखे तो पंत अपने चिंतन और विषय में अधिक विकासशील रहे हैं। पंत के माध्यम से छायावाद को उत्तर छायावाद में नया चिंतन और नया विषय-जगत प्राप्त हुआ। 'युगांत' से 'ग्राम्या' तक पंत की काव्य-यात्रा निःसंदेह प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखर स्वरों की उद्‌घोषणा करती है। 1936 ई. मे 'युगांत' की घोषणा कर के पंत ने 1939 ई. में 'युगवाणी' और 1940 ई. में 'ग्राम्या' की रचना की। पंत के 'युगांत' के बाद दो सोपानों पर काव्य का विकास होता है - मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और अरविंद दर्शन। पंत मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जनजीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुये। निराला ने संवेदना और अनुभव से जन जीवन को अपनाने के साथ मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्तर पर ग्रहण किए। मार्क्सवादी दृष्टि से पंत ने अपनी कविताओं में ग्रामीण जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है ।

बृहद् ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वंस से कवलित,
ग्राम आज है पृष्ठ जनों की करुण कथा का जीवित!
युग युग का इतिहास सभ्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियों की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखांकित।

'ग्राम्या' के बाद पंत अरविंद दर्शन से प्रभावित होते हैं। प्रगतिवाद के भौतिक दर्शन की ओर से उनके भटके हुये विचार पुनः आध्यात्मिक लोक की ओर उन्मुख होने लगते हैं। अतः विचार के स्तर पर छायावाद को एक नयी दिशा और आधार प्राप्त होता है। वे मार्क्स के भौतिकवाद से असन्तुष्ट होते हुये भी उसे आवश्यक मानते हैं, किन्तु पर्याप्त न मानकर ही पंत अरविंद दर्शन में भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद को समन्वित करने की अन्वेषणा में लग जाते हैं। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'शिल्पी', 'लोकायतन' आदि परवर्ती कविताओं में पंत ने समन्वय को स्वर दिए हैं। किन्तु इस विकास यात्रा में कवि का काव्यपक्ष दबता गया, जबकि धारणापक्ष उठता गया। वे मानव समाज की समस्याओं, उनके समाधानों तथा नवीन विचारों को अनुभूति स्तर पर न स्वीकार कर धारणा एवं आकांक्षा के स्तर पर स्वीकारते हैं ।

महादेवी वर्मा :- महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'दीपशिखा' में भावधारा का उत्कर्ष रूप दिखाई देता है। अतः 'दीपशिखा' उनकी उत्कृष्ट रचना है। उनके काव्य का मुख्य विषय प्रेम रहा। प्रेम के दोनों पहलुओं संयोग और वियोग में उभरने वाले प्रेम के अनेक दृष्टियों को अपने अनुभव के आलोक में महादेवी वर्मा देखती हैं। महादेवी के काव्य की मूल संवेदना वेदना है, जो विरहजन्य है। करुण वेदना और निराशा से आक्रांत इनका प्रारम्भिक काव्य 'दीपशिखा' आलोक प्राप्त करने में सफल हो सका है। आशा, मिलन एवं उल्लास भाव अग्रसर है -

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन।
अगरु धूम-सी साँस सुधि-गंध सुरभित।

सब बुझे दीपक जला लूँ।
घिर रहा तम आज दीपक-रागिनी अपनी जगा लूँ।

महादेवी में गीति काव्य के उत्कर्ष की सुंदर भावनाएँ हैं। लेकिन रहस्यात्मकता का आवरण उनके प्रभाव की तीव्रता को कुंठित करने में सफल होता है। महादेवी वर्मा अपनी संवेदनाओं को अलग-अलग प्रतीकों और रूपकों में अभिव्यक्त करती हैं । लौकिक संवेदना रहस्यवादी आभास से लिपटकर एक नए अर्थ का विस्तार करती हैं, किन्तु उनकी लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता विलीन हो जाती है। महादेवी वर्मा की कविताओं में दीप, चन्दन, मंदिर, क्षितिज, आकाश, मेघ, करूण, धूल, सागर, विद्युत आदि प्रतीकों का प्रयोग, भाव की अभिव्यक्ति के लिए बार-बार हुआ है इसी कारण वे रहस्यात्मक संकेत में उलझ जाते हैं। इन सब के बावजूद महादेवी वर्मा छायावाद की विशिष्ट और समर्थ कवयित्री हैं और 'दीपशिखा' उनकी विशिष्ट काव्य कृति है। रहस्य एवं संकोच का आवरण होते हुये भी कवयित्री की अंतरंग-निजता अनेक गीतों में प्रवाहमान रहती है। । सूक्ष्म चित्रात्मकता उनकी काव्य की दूसरी विशेषता रही है। उनके चित्र;

रूप-जगत और भाव-जगत दोनों के हैं। कवयित्री के मानसिक संदर्भ में ही रूप जगत के चित्र नियोजित होते हैं। इनके गीत आत्मानुभूति से उपजे, भाषिक उत्कृष्टता के साथ, स्वर लययुक्त, कोमलता , बिंब ग्रहण, पद संतुलन, शब्दों के चयन आदि सभी मायने में विशेष हैं ।

5.3.2 वैयक्तिक गीति काव्य

व्यक्तिनिष्ठा एवं वैयक्तिक गीति-काव्यधारा पर जब विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि वैयक्तिक गीति काव्य तथा छायावादी काव्य में कवि दृष्टि एवं विषय की समानता रही है। व्यक्तिवादी कवियों की दृष्टि भी रोमानी रही। इनकी कविताओं में आत्मसंपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। क्योंकि इनका संबंध वस्तु जगत से नहीं, अपितु वस्तुजगत की प्रक्रिया से उत्पन्न अपने निजी सुख-दुख के आवेग से संबद्ध थे। सौन्दर्य और प्रेम तथा उल्लास और विषाद की अनुभूति इनके काव्यों की विशेषता रही है। गीत को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया है, क्योंकि छायावादी काव्य की प्रकृति की ही भाँति व्यक्तिवादी काव्य की प्रकृति भी गीतात्मक ही रही। इनकी काव्य में संकोच, रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता को महत्व नहीं दिया गया। । इनकी वेदना छायावादी कवियों की तरह सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव के बिम्ब को पूरी सफलता के साथ उकेरता है। व्यक्तिवादी गीति कविता 'मैं' को माध्यम बनाकर अपना अनुभव व्यक्त करती है। यहाँ 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ स्वतः निकलता है।

इस काव्य की प्रवृतियों में लौकिक प्रेम केंद्र विषय रहा। इन कविताओं में प्रेम के संयोग-वियोगजन्य उल्लास, उदासी, टूटन, पीड़ा, असंतोष आदि का सघन स्वर मुखर हुआ है। लौकिक सौंदर्य-आलंबन पर ठहरे होने के कारण इनका प्रेम अधिक मूर्त रूप धारण करता है। बच्चन के काव्य 'निशा निमंत्रण' और 'एकांत संगीत' प्रेम के अवसाद को मुखर करती है तो 'मिलन-यामिनी' मिलन की मादकता और उमंग को। नरेंद्र शर्मा के काव्य में लौकिक विरह की व्यथा की प्रधानता है, तो अन्य कृतियों में प्रेयसी के सौंदर्य, भोग और ऊष्मा के मादक चित्र भी मौजूद हैं। इस धारा का मूल स्वर प्रेम है। अनुभवों के इन सत्यों को कवि का मन स्वच्छंद हृदय तथा निर्लिप्त भाव से गाना चाहता है। 'मधुकलश' में हरिवंश राय बच्चन ने अपने और सामाजिक तनाव को अनुभव करते हुये उसकी अभिव्यक्ति की हैं -

शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा,
कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।
क्या किया मैनें नहीं जो कर चुका संसार अबतक ?
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी?

सत्यतः इस धारा की कृतियों में जो निराशा और उदासी के स्वर आये हैं वह केवल प्रेम मूलक सौंदर्य के साथ; उनका स्वर जीवन के अन्य संदर्भों में भी मुखर हुआ है। देश की पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों आदि से गुजरता हुआ युवा मानस बार-बार अपने आप को टूटता हुआ पा रहा था। आत्मपीड़न, टूटन, कुंठा आदि के नए पर्त लपेट लेता और उसे अपनी काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करता चला जाता।

इन कवियों के पास भावुक हृदय के अनुभव थे। जीवन दृष्टि के अभाव में ये व्यक्तिवादी-अनुभव, निराशा, मृत्यु की छाया और नियति बोध से ग्रसित हैं। इनका अनुभव जहाँ अपनी तीव्रता में सूक्ष्म, परंतु खुले हुये बिंबों की रचना में एक नए साहित्यिक सौंदर्य की सृष्टि करते हैं, वहाँ अपने अकेलेपन, उदासी और अपने दोहराव में क्षयोन्मुख दृष्टिगोचर होने लगता है। इस धारा के कवि सामाजिक और आध्यात्मिक आदर्श से व्यक्ति को जोड़ने में बहुत ज्यादा सफल नहीं हो पाये, क्योंकि इनकी दृष्टि रोमानी थी । एक ओर काव्यात्मक दृष्टि से सपाट हो जाता है तो दूसरी ओर अपनी सार्थकता को किसी भी प्रकार प्रमाणित नहीं कर पाता। जैसे -

भटका हुआ संसार में
अकुशल जगत व्यवहार में
कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ
किन्तु अकेला आज मैं।" - एकांत संगीत

व्यक्तिवादी अनुभव यात्रा के दो परिणाम दिखाई देते हैं। पहला यह विश्वास कि जीवन क्षणभंगुर है। दूसरा यह कि कवि अपने गमों को भूलने मधु का सहारा लेता है। वह अपनी मादकता, प्रेम या उल्लास को तीव्र करने के लिए मधुशाला के मार्ग पर चल पड़ता है लेकिन वह मार्ग है - **'पाठकगण हैं पीनेवाले पुस्तक मेरी मधुशाला'**।

यथार्थतः यहाँ अभिव्यक्तिमूलक सादगी वैयक्तिक गीति कविता की बहुत बड़ी देन है। कवि अपने गहरे भावों की अभिव्यक्ति सीधे-सादे शब्दों में करता है। कवि की शक्तियाँ और अशक्तियाँ बड़े स्पष्ट रूप में सामने आती हैं। शक्तियों की यह विशेषता है कि वे अस्पष्ट बिंबों में खुद को उलझाकर अपनी तीव्रता एवं प्रभाव नष्ट नहीं करती। अशक्तियाँ रहस्यात्मकता का लाभ उठाकर अपनी महानता को आभासित नहीं कर पाती हैं । इन कवियों की संवेदनाएँ व्यक्तिवादी हैं। इन कवियों की काव्य-भाषा संस्कृतनिष्ट होते हुये भी शब्द और पद हमें जाने-पहचाने से लगते हैं। इस धारा के प्रमुख कवियों में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', नरेंद्र शर्मा तथा हरिवंश राय बच्चन आदि हैं।

हरिवंश राय बच्चन :- हरिवंश राय बच्चन वैयक्तिक गीति काव्य के सर्वोत्तम कवि हैं। वे मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। इनकी रचनाएँ प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी हैं 'निशा निमंत्रण', 'एकांत संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के गीत इस दृष्टिकोण से गीतिकाव्य की उपलब्धियाँ हैं तो अवधारणाएँ अनुभूति के रंग में रंगी हुई हैं। हरिवंश राय बच्चन ने स्वानुभूति-जन्य-सौन्दर्य, सुख-दुख और प्रेम के गीत अति सहजता से गाए हैं। हरिवंश राय बच्चन ने अपनी गीतों में सहज भाषा तथा अनुभूति की निश्छलता के फलस्वरूप काव्य को नवीन गरिमा प्रदान की हैं। उन्होंने निर्मम भाव से अपनी जानी-पहचानी दुनिया को छोड़ कर यथार्थ की नयी दुनिया में प्रवेश किया। जो आज भी अपनी प्रभावोत्पादकता के लिए सुविख्यात हैं ।

नरेंद्र शर्मा :- नरेंद्र शर्मा के गीतों की विशेषता महत्वपूर्ण है। उनके गीतों में आत्मीयता व चित्रात्मकता है। सुख-दुख गीतों के माध्यम से सीधे उनके प्रेमपात्र को निवेदित है। माध्यम के अलावा किसी अवधारणा या छलकपट को अवसर नहीं मिलता। गीतों का परिवेश कवि के अनुभवों को जीवंत बनाता है। उनके गीतों को पढ़ने से अनुभव होता है कि जैसे उन्होंने हमारे ही अनुभवों को शब्दबद्ध किया है। नरेंद्र शर्मा के गीतों का विषय प्राकृतिक सौंदर्य, मानवीय सौंदर्य तथा उससे उत्पन्न विरह-मिलन की अनुभूतियाँ। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मैंने भी चाहा फिर आये
बिछुड़ा जीवन साथी मेरा।
कच्चे धागे सा सुख सपना
टूट गया सो टूट गया"
"फिर फिर रात और दिन आते
फिर फिर होता साँझ सवेरा,

नरेंद्र शर्मा ने सामाजिक यथार्थ के चित्रण के साथ ही साथ विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह के स्वर मुखर किए हैं। उनके गीतों में रूमानी दृष्टि की प्रधानता है तथा सामाजिक चिंतन का पुट विद्यमान है

'मेरे गीत बड़े हरियाले'
मैंने अपने गीत सघन बन
अन्तराल से खोज निकाले।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' :- इस काव्यधारा के सुप्रसिद्ध कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य में तीव्र रोमानी संवेदना परिलक्षित होती है। रूपासक्ति, पीड़ा, वासना एवं जिजीविषा में इनका उद्दाम रूप दिखाई देता है साथ ही श्रृंगारिकता भी लक्षित होती है । उनके यायावर प्रवृति के परिणामस्वरूप उनके काव्य में समाज का यथार्थ रूप दृष्टिगोचर होता है।

5.3.3 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा

प्रत्येक राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं से प्रसिद्धि प्राप्त करता है। संस्कृति राष्ट्र में समाहित होती है। आधुनिक युग में 'राष्ट्रीय' शब्द आधुनिकता के समावेश से प्रस्तुत हुआ है। संप्रदाय, जाति, धर्म, निश्चित भू-भाग आदि के स्थान पर समग्र देश, उसमें निवास करने वाली सभी जातियों,संप्रदायों, विभिन्न भूखंडों, रीति-रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभर कर सामने आया। राष्ट्रीयता के अर्थ का विकास राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की कविताओं में सम्पूर्ण भारतवर्ष की अखंडता और एकता के रूप में हुआ। अंग्रेजी शासन के चलते पूरे भारतवर्ष ने यह महसूस किया कि चाहें वे किसी भी धर्म, जाति के हों पर हैं तो अंग्रेजों के गुलाम ही और जिस कारण उन्होंने समान यातना का भी अनुभव किया। उनके भीतर मुक्ति की चेतना समस्त राज्यों में एक साथ होने लगा। अतः राष्ट्रीयता का जो स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ, उसके मुख्य आधार हैं - अंग्रेजी शासन की स्थापना पूरे देश में होना, समस्त भारतीय प्रजा का

अंग्रेजी शासन से उत्पन्न एक समान यातना का अनुभव करना, तथा पूरे देश में स्वाधीनता आंदोलन और मुक्ति चेतना का प्रसार होना।

भारतीय और पाश्चात्य राष्ट्रीयता के तत्त्वों में भिन्नता थी । पश्चिम में राष्ट्रीयता का विकास सबसे पहले होता है, खासकर इंग्लेंड में। भारतीय में जहाँ स्व-रक्षा का भाव प्रधान था, वहीं पाश्चात्य में स्व-विकास का। भारत में भाषा और संस्कृति में विविधता होते हुये भी राष्ट्रीय एकता प्रमुख है। प्राचीन आध्यात्मिकता तथा प्राचीन संस्कृति राष्ट्रीय एकता का वह मूल स्रोत है जो सबको सूत्रबद्ध करता है। अतः राष्ट्रीयता की मुख्य बातें जो लक्षित होती हैं, वह इस प्रकार है- प्रथमतः पराधीनता की यातना को अनुभव को महसूस करना तथा उस यातना से मुक्ति पाने के लिए किए गए प्रयत्न। द्वितीयक : अलगाव और पश्चिमी सभ्यता की भावना से आक्रांत होती भारतीय चेतना के लिए, एकता एवं स्वाभिमान का बल फूंकने के लिए अपनी प्राचीन संस्कृति के समुज्ज्वल रूप का प्रस्तुतिकरण, तथा तृतीयक : उपयोगी आधुनिक मूल्यों के संदर्भ में राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिकता का पुनर्विचार एवं पुनर्गठन। स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्रीयता के मुख्य तीन उद्देश्य रहें हैं - देश का विकास, राजनीतिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा और नवीन राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिवेशों के कारण उत्पन्न समस्याएँ तथा उनके समाधान खोजने की चेष्टा। यही उद्देश्य तत्कालीन काव्य-परिवेश में दिखाई भी देते हैं |

राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी कविता में 'भारतेन्दु-युग' की कविताओं से प्रारम्भ होता है। 'भारतेन्दु-युग' से लेकर समकालीन कविताओं में राष्ट्रीयता का रूप विकसित होता रहा । दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन आदि कवियों की कविताओं में हम राष्ट्रीयता की झलक देखते हैं।

1938 ई. के आस पास राष्ट्रीय जीवन की यातना, मुक्ति और आक्रोश के स्वर में एक नए तरह का उभार लक्षित होता है। इस समय साहित्य का स्वर अधिक यथार्थवादी, उग्र और लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवाद ने शोषक और शोषितों के रूप को लक्षित किया साथ ही भारतीय राष्ट्रीयता को उसके जन-जीवन से जोड़ा है। राष्ट्रीयता का संबंध राष्ट्र की आत्मा, चेतना और उसकी अस्मिता से होती है। यह चेतना अस्थिर रहती है और नये-नये परिस्थितियों में अनेक नये कोण उभारती है। इसका उदाहरण 'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'कामायनी', 'प्रिय-प्रवास', 'राम की शक्तिपूजा' आदि महत्वपूर्ण काव्य हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिभा सम्पन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्वीकारा है। छायावादोत्तर कविताओं में यह प्रयास लक्षित होता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण इस कालावधि में प्रकाशित महत्वपूर्ण कृतियों में हुआ है। यथा - 'कुरुक्षेत्र', 'नकुल', 'रश्मिरथी', 'जय-भारत' आदि।

मैथिलीशरण गुप्त :- मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य का विषय बनाया है। इनकी रचनाओं में वैविध्य की

स्थिति देखी जा सकती है। महात्मा गांधी ने मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र कवि कहे जाने का गौरव प्रदान किया।

मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ राष्ट्रीय विचारधारा की विशेषता से ओत-प्रोत हैं। राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति का नवीनतम रूप प्रस्तुत हुआ है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'यशोधरा', 'भारत-भारती', 'पंचवटी', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'जयद्रथ वध' आदि। उनकी कृतियों में राष्ट्रीयता, युगबोध तथा जन-जागरण की प्रवृति विद्यमान है। उपनी कृति 'अनघ' में सत्याग्रह की प्रेरणा देते हुये राष्ट्र-सेवा, राष्ट्र-रक्षा आदि की भावनाओं को चित्रित किया। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत ऐसी रचना थी जिसमें उन्होंने भारतवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति पाने का संदेश दिया है। देखें-

"शासन किसी परजाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
संभव नहीं है किन्तु जो सर्वांश में वह इष्ट हो।।"

उनका मानना था कि कवि का कर्तव्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता अपितु उसके द्वारा सृजित कविता लोककल्याण की विधायक भी होनी चाहिए।

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।।"

माखन लाल चतुर्वेदी :- माखन लाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विचारधारा की कविताएँ लिखीं। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, स्वाधीनता-सेनानियों के अदम्य उत्साह, अंग्रेज़ों के अत्याचारों आदि का बखूबी चित्रण किया। माखन लाल चतुर्वेदी की 'रसिक मित्र' पहली रचना है जो ब्रजभाषा में प्रकाशित हुई थी। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सुबोध, ओज और प्रसाद गुण से पूर्णतः सम्पन्न है। उनकी शैली भावप्रधान है। माखन लाल चतुर्वेदी की भाषा-शैली पर आलोचकों ने बेडौल होने का आरोप लगाया। उनकी कविताओं की भाषा में कहीं बुंदेलखंडी का ग्राम्य प्रयोग है तो कहीं कठिन संस्कृत शब्दों का प्रयोग है। नियमों में बंधकर काव्य की रचना उन्हें स्वीकार्य नहीं था। उनके लिए काव्य में कुछ महत्वपूर्ण था तो उसकी अभिव्यक्ति और उसकी मौलिकता। उन्होंने जनमानस में समझौते के खिलाफ चेतना जाग्रत की। वे लिखतें हैं -

"अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र , उन्मुक्त राष्ट्र , यही मेरी बोली
यह सुधार समझौतों वाली, मुझको भाती नहीं ठिठोली।"

माखन लाल चतुर्वेदी की काव्य में मुख्यतः राष्ट्रीयता, प्रेम, प्रकृति और अध्यात्म का पुट विद्यमान है। इनकी सबसे महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रचना 'पुष्प की अभिलाषा' है। इस कविता के माध्यम से इन्होंने सम्पूर्ण स्वतन्त्रता सेनानियों के मनोभावों को चित्रित किया है-

"चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,

चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर हे हरी डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।"

रामधारी सिंह दिनकर :- राष्ट्रकवि के नाम से प्रसिद्द दिनकर जी हिंदी साहित्य के इस कालावधि के सबसे सशक्त कवि हैं। रामधारी सिंह दिनकर का महत्त्व राष्ट्रीय एवं ओजपूर्ण कविताएँ लिखने के लिए है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ विचार और संवेदना का समन्वय भी दिखाई देता है-

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भू-मण्डल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश मे वहाँ खड़ा, भारत जीवित भास्वर है।"

व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताएँ और राष्ट्रीय कविताएँ कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। सहजता, लोकोन्मुखता इनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। साथ ही मानव जीवन के अस्तित्व की समग्र संचेतना से ओत-प्रोत काव्य-पंक्तियाँ भविष्य के लिए उसे सावधान भी करती हैं -

'सावधान मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : - इन्होंने प्रेम, सौंदर्य एवं राष्ट्रीय- सांस्कृतिक भावनाओं का चित्रण किया है । जिसमें से राष्ट्रीयता प्रमुख है। कवि क्रांति का पक्षधर है-

सावधान! मेरी वीणा में, चिनगारियाँ आन बैठी हैं,
टूटी हैं मिजराबें, अंगुलियाँ दोनों मेरी ऐंठी हैं।
कंठ रुका है महानाश कामारक गीत रुद्ध होता है,
आग लगेगी क्षण में, ह्रत्तलमें अब क्षुब्ध युद्ध होता है,
झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं -इस ज्वलंत गायन के स्वर से
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान हैनिकली मेरे अंतरतर से!

राष्ट्रीय धारा के मान्य कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य ग्रन्थों में 'कुमकुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'उर्मिला' (महाकाव्य), तथा 'मृत्यु के बाद प्राणार्पण' (खंड काव्य) आदि प्रमुख हैं। उन्होंने प्रकृति को मानव चिरपोषिका के रूप में स्वीकार किया। प्रकृति का मानवी रूप भी उनके काव्य में चित्रित है। उद्यान का वर्णन देखने लायक है -

"फूली-फूली विपिन भर में डोलती है चमेली
मानो मुग्ध, श्वसुर गृह में, पा गई प्रेम-बेली।" - उर्मिला

सुन्दर एवं अनूठा एक और उदाहरण देखा जा सकता है जहाँ विरह-व्यथा से पीड़ित प्रकृति भी कवि को अश्रु-विगलिता सी प्रतीत होती है- **"टपक टप-टप चले विटप के अश्रु कण**

मूल विपदा-मानो बह चली री।" -रश्मिरेखा

सियारामशरण गुप्त :- गांधीवाद की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है।-

क्षुद्र सी हमारी नाव, चारो ओर है समुद्र,
वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निगल जाने को नौका के चारो ओर,
सिंधु की तरंगे सौ-सौ जिव्हाएँ पसारे हैं' ।।
सुनसान कानन भयावह है चारो ओर,
दूर दूर साथी सभी हो रहे हमारे हैं।
काँटे बिखरे हैं, कहाँ जावें कहाँ पावें ठौर,
छूट रहे पैरों से रुधिर के फुहारे हैं' ।।

गाँधी जी पर इनकी अटूट आस्था थी इसलिए इनकी रचनाओं में गाँधीवाद की अमिट छाप दिखती है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है..... "गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा, सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गाँधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

इनके काव्य में देश की ज्वलंत घटनाओं तथा समस्याओं का चित्रण हुआ है। इनके काव्यो में आधुनिक मानवता की करुणा, यातना और द्वंद का मिश्रित रूप उभरा है, भले ही उसकी पृष्ठभूमि अतीत हो या वर्तमान। ग़रीबों की लाचारी और बालहठ का सुन्दर चित्रण भी हैं -

मैं तो वही खिलौना लूंगा मचल गया दीना का लाल
खेल रहा था जिसको लेकर राजकुमार उछाल-उछाल।
व्यथित हो उठी मां बेचारी- था सुवर्ण-निर्मित वह तो !
'खेल इसी से' लाल, नहीं है राजा के घर भी यह तो !

कवि ने राष्ट्रीयता के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीयता को भी महत्व दिया है। आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में 'उन्मुक्त' कविता सियारामशरण गुप्त की महत्वपूर्ण कृति है जिसमें कवि ने अपने तरीके से युद्ध की अनिवार्यता, त्याग, बलिदान, यातना, विभीषिका तथा मानवीय करुणा का अद्‌भुत समन्वय किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

उत्तर छायावादी युग में साहित्य कितने प्रकार के लिखे गये?

युगांत की घोषणा कब और किस कवि ने की?

महादेवी के प्रारंभिक काव्य का नाम बताइए, जो करुण वेदना एवं निराशा से आक्रांत होकर लिखा गया।

मूल स्वर 'प्रेम' किस काव्यधारा में है?

किस कवि ने 'मधुशाला' की रचना की?

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्याधारा के सर्वाधिक सशक्त कवि का नाम बताइए।

गतिशील काव्य

प्रगतिवाद का उदय छायावाद के पश्चात एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में हुआ। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ प्रगतिवाद का उदय माना जाता है। हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद का प्रारम्भ सं 1936 ई. में हुआ। 1936 ई. से 1943 ई. की कविता प्रगतिवादी कविता है। हिन्दी के वे कवि जिन्होंने साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर काव्य रचना की, वे कवि प्रगतिवादी कवि कहलाए। इस साहित्य में मूल रूप से कार्ल-मार्क्स की विचारधारा की प्रधानता है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलस शर्मा, त्रिलोचन आदि कवि इस धारा के प्रमुख कवियों में से हैं। इन कवियों के अतिरिक्त सुमित्रानंदन पंत, निराला, रामधारी सिंह 'दिनकर', आदि कवि की कविताओं में भी प्रगतिवादी तत्व उपलब्ध होते हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में जो विचारधारा साम्यवाद या मार्क्सवाद कहलाती है, वही साहित्यिक क्षेत्र में प्रगतिवाद कहलाती है। साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप लिखी गई कविता प्रगतिवादी कविता है। इस विचारधारा के आधार पर दो वर्गों मे समाज को बांटा जा सकता है - शोषक और शोषित वर्ग।

प्रगतिवाद रचना और आलोचना के क्षेत्र में सर्वथा नवीन दृष्टिकोण लेकर आया। यह रचना का उद्देश्य सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को ही मानता है। चूंकि प्रगतिवादी कविता स्पष्ट भाषा में सामाजिक जीवन की वास्तविकता को लेकर चली ।

प्रमुख साहित्यकार :

केदारनाथ अग्रवाल :- इनकी कविताओं में मानव और प्रकृति के सौंदर्य का बड़ा सहज और उन्मुक्त रूप दृष्टिगोचर होता है-

हवा हूँ, हवा मै बसंती हवा हूँ।
चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया;
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू',
उतरकर भगी मैं, हरे खेत पहुँची -
वहाँ, गेंहुँओं में लहर खूब मारी।

भावुकता, रूमानी आदर्शवाद इनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। केदारनाथ अग्रवाल की प्रमुख काव्य-संग्रह 'अपूर्वा', 'गुलमेंहदी' तथा 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' है। प्रकृति चित्रण को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है -

"आज नदी बिलकुल उदास थी सोयी थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया दबे पाँव वापस घर आया।"
- **फूल नहीं रंग बोलते हैं**

नागार्जुन :- नागार्जुन का प्रगतिवादी कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है। नागार्जुन के यहाँ मुख्यतः तीन तरह की कविताएँ हैं। पहला- कुछ गंभीर कविताएँ, कलात्मक और संवेदनात्मक हैं, जिनमें नागार्जुन ने मानव मन की रागात्मक और सौंदर्यमयी छवियों को अंकित किया है। दूसरा - उद्बोधनात्मक कविताएँ हैं। जैसे- 'बादल को घिरते देखा है', 'चंदना', 'रवीन्द्र के प्रति, 'तिलकित भाल' आदि। तीसरी कोटि की वे कविताएँ हैं, जो राजनीतिक अव्यवस्था, सामाजिक कुरूपता तथा धार्मिक अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य करती हैं। जनमानस के भीतर की आग को समझने वाला क्रांतिकारी कवि यथार्थ के चित्रण से चूकता नहीं-

सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक
जली ठूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

व्यवस्था के प्रति कवि की संवेदनशीलता को 'शिक्षा-पद्धति' पर एक व्यंग्य के रूप में देखा जा सकता है -

"घुन खाये शहतीरों पर कि बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत छूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।"

-युगधारा

गजानन माधव मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध जनवादी कवि हैं। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी रही। मुक्तिबोध ने फेंटेसी का प्रयोग यथार्थ के चित्रण के लिए किया। अतः इस प्रकार उनकी रचनाओं में नाटकीयता है। 'चाँद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' प्रमुख व महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

त्रिलोचन :- 'मिट्टी की बारात' त्रिलोचन की प्रमुख काव्य कृति है। इन्होंने छोटी किन्तु तीव्र कविताएँ लिखी हैं। 'ताप के तापे हुये दिन', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'धरती' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

प्रमुख विशेषताएँ :

जीवन और जगत के नए दृष्टिकोण से प्रगतिवाद का संबंध है। प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। समाज में जो घटित हो रहा है प्रगतिवादी कवियों ने उसे ही अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। अतः प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ अग्रांकित हैं -

शोषितों की दीनता का चित्रण : प्रगतिवादी कविताओं में शोषितों की दीनता का चित्रण पूरे यथार्थ रूप में हुआ है। प्रगतिवादी कवियों ने शोषित और शोषकों के बीच का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत करके सामाजिक विषमता का उद्‌घाटन किया है। दिनकर की कविता की पंक्तियों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है -

"श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की छाती से चिपक, ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।"

सामाजिक यथार्थ का चित्रण : प्रगतिवादी कवियों के काव्य में कल्पना, मनोरंजन को कहीं भी स्थान नहीं मिला। उन्होंने यथार्थ के धरातल पर उतरकर काव्य की रचना की है। उनके पास सामाजिक यथार्थ को देखने की दृष्टि है। कवि कभी सामाजिक विषमता को उजागर करता है तो कभी विक्षोभ व्यक्त करता है; यथा -

"बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।"

क्रान्ति की भावना : मार्क्सवाद में सामाजिक समता के लिए क्रान्ति का समर्थन किया गया है। प्रगतिवादी कवियों ने भी क्रान्ति को ही प्राचीन कु-रीतियों के विनाश का माध्यम माना हैं। प्रगतिवादी कवियों ने हिंसा को समता के लिए उचित माना है -

"काटो-काटो काटो कर लो, साइत और कुसाइत क्या है।
मारो-मारो मारो हसियां, हिंसा और अहिंसा क्या है।"

बौद्धिकता एवं व्यंग्य-प्रसार : बौद्धिकता का स्वरूप जन जीवन की समस्याओं में परिलक्षित होता है, सामाजिक सुधार की मानसिकता से प्रगतिवादी कवि व्यंग्य को अधिक पसंद करते हैं।

पूंजीवादी, शोषण की प्रवृति, आधुनिक राजनीति आदि को अपने व्यंग्य का विषय बनाते हैं। डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं - "हिन्दी कविता में व्यंग्य कविता का जितना सुंदर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कहीं नहीं।" कागजी योजना एवं कागजी कार्यान्वयन की आजादी पर नागार्जुन के तीव्र प्रहार को देखा जा सकता है -

"कागज की आजादी मिलती,
ले लो दो-दो आने।"

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण : प्रगतिवादी कवि को जीवन की स्वीकृति के कवि कहा जाता है। प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता सकारात्मक दृष्टिकोण है। प्रगतिवाद कवि भयानक और अंधकार निराशा में भी एक प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं; यथा -

"रोज कोई भीतर चिल्लाता है कि कोई काम बुरा नहीं
बशर्ते कि आदमी खरा हो,
फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।"

नारी चित्रण : प्रगतिवादी कवियों ने नारी के यथार्थ रूप का चित्रण अपनी कविताओं में किया है। उनके यहाँ नारी न तो कोई कल्पना लोक की परी है और न ही सौन्दर्य वृतियों की पराकाष्ठा। प्रगतिवादी कवियों ने उस नारी का चित्रण किया है जो रात-दिन पुरुष के साथ सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को झेलती है। निराला द्वारा रचित 'तोड़ती पत्थर' कविता की पंक्तियों को देखा जा सकता है -

"वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर।
गुरु हथौड़ हाथ, करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकारा॥"

शैलीगत विशेषताएँ : सरल भाषा का प्रयोग कर प्रगतिवादी कवियों ने उसे संप्रेषणीय बनाया। मुक्त छंद तथा अलंकारविहीन शैली का प्रयोग किया। इनके बिम्ब भी सीधे साधे हैं। उसमें कहीं बनावट नहीं। सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार॥"

सामाजिक विषमता को उजागर करने का महत्वपूर्ण प्रयास प्रगतिवादी कवियों ने किया है। प्रगतिवाद का ऐतिहासिक महत्व काव्य-प्रवृत्ति के रूप में तथा व्यापक साहित्यिक आंदोलन के रूप में है । प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य के रचना-संसार को महत्त्व दिया।

7.5 प्रयोगवाद

हिंदी साहित्य-इतिहास के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि आधुनिकतावाद का आरंभ प्रयोगवाद से ही होता है। प्रगतिवाद के बाद का काल प्रयोगवाद के नाम से अभिहित किया गया है। सं 1943 ई. अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' के प्रकाशन से प्रयोगवाद का प्रारम्भ माना जाता है। प्रयोगवादी कवि 'प्रयोग' करने में विश्वास करते हैं। अज्ञेय लिखते हैं - "...संगृहीत कवि प्रयोग को कविता का विषय मानते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुये नहीं हैं, अभी राही नहीं हैं, राही नहीं! राहों के अन्वेषी।" दूसरे सप्तक में अज्ञेय ने इसका खंडन कर के लिखा - "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है।"

प्रयोगवाद का मूल आधार व्यक्तिवाद है। प्रगतिवाद में जहाँ सामूहिकता को बल दिया गया, प्रयोगवाद में ठीक उससे विपरीत व्यक्तिवाद को महत्त्व मिला। यहाँ वैयक्तिकता छायावाद के अर्थ से भिन्न है। यह मुख्यतः शहरी जीवन की जटिलता से संबद्ध है। इसमें यथार्थ का अमूर्तन मिलता है। प्रयोगवादी कवियों ने अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को, अपनी व्यक्तिगत संवेदनाओं को नए-नए माध्यमों से व्यक्त किया और जिसे उन्होंने भोगा उसे अभिव्यक्ति प्रदान की। प्रयोगवाद साहित्य में नवीन प्रयोग पर बल देता है। वह सामाजिक पक्ष का साहित्य में उपेक्षा करता है। प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं मानता, बल्कि काव्य के काला पक्ष और रूप पक्ष पर भी बल देता है।

प्रयोगवाद कवियों ने भी यथार्थ को अपनी कविताओं में स्थान दिया। भावुकता के स्थान पर वे ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते हैं। मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन की समस्त जड़ता, अनास्था, पराजय, कुंठा और मानसिक संघर्ष के सत्य को बड़ी बौद्धिकता के साथ उद्‌घाटित करते हैं। प्रयोगवादी कविताओं में मध्यवर्गीय व्यक्ति की पीड़ा को अनेक स्तरों पर उभारा गया है। इन्होंने कल्पना का रंगीन आवरण हटा कर दमित यौन-वासनाओं के नग्न रूप को स्पष्ट किया है। प्रयोगवादी कवि पीड़ा-बोध का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हैं-

"दुख सब को माँजता है और
चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिनको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।"

- **अज्ञेय**

प्रमुख साहित्यकार :

अज्ञेय :- प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय जाने जाते हैं। तार सप्तक के प्रकाशन से ही अपनी प्रयोगधर्मिता का परिचय देते हैं। उनका प्रयोगवाद संवेदना के धरातल के

आस पास से गुजरता है। अज्ञेय अपनी रचनाओं में काव्य के सत्य पर विचार करते हैं। जिजीविषा, प्रकृति के प्रति लगाव, मध्यवर्गीय जनता की पीड़ा आदि को व्यक्त करना इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं । अज्ञेय समाज के यथार्थ का चित्रण भी अपनी कविताओं में करते हैं। समाज में व्याप्त खोखली सभ्यता तथा नागरिक जीवन में व्याप्त डसने की जहरीली प्रवृति पर अज्ञेय कुछ इस प्रकार व्यंग्य करते हुये लिखते हैं-

"साँप तुम सभ्य तो हुये नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ, दोगे उत्तर
फिर कहाँ सीखा डसना
यह विष कहाँ पाया?"

इनकी महत्वपूर्ण रचनाओं में 'भग्नदूत' प्रथम काव्य संग्रह है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार' आदि हैं।

मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध की रचनाओं में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का रासायनिक मिश्रण है। मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष व सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में फेंटेसी का प्रयोग किया है। 'चाँद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में' प्रमुख व महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। मुक्तिबोध ने दीन-हीन शोषित सर्वहारा के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। वे शोषणमुक्त समाज की आशा करते हुये लिखते हैं -

"समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुंदर व शोषण मुक्त
कब होंगे?"

शमशेर बहादुर सिंह :- शमशेर बहादुर सिंह मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इनके काव्य में प्रयोग की प्रवृति अधिक मात्रा में है। इनकी काव्यों में 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी हूँ नहीं मैं' आदि। प्रेम और प्रकृति सौंदर्य इनकी कविताओं की मुख्य विशेषताएँ हैं । इनके प्रेम में गहरी आसक्ति विद्यमान है -

"तुम मुझसे प्रेम करो
जैसे मछलियाँ
लहरों से करती हैं।"

नरेश मेहता :- आरंभ में नरेश मेहता पर प्रगतिवाद का प्रभाव था। इनका प्रिय विषय 'प्रकृति चित्रण' रहा। 'महाप्रस्थान', 'समय देवता', 'वैन पाखी! सुनो!!', 'संशय की एक रात', 'बोलने दो चिड़ को' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं ।

प्रमुख विशेषताएँ :

व्यक्तिवाद :- प्रयोगवदी कवियों ने वैयक्तिकता पर बल दिया। प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तगत जीवन के सुख-दुख को काव्य का विषय बनाया। अज्ञेय ने 'नदी के द्वीप' नामक कविता में व्यक्ति और समाज को व्यक्त किया। प्रयोगवादी कवियों ने अपने विक्षोभ, कुंठा, निराशा, सफलता-असफलता को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर के आत्मतृप्ति का अनुभव किया।

यथार्थवादिता :- प्रयोगवादी कवियों का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। प्रयोगवादी कविताओं की विषय-वस्तु, प्रतीक, उपमान, भाषा आदि यथार्थ पर आधारित है। प्रयोगवादी कवि अपने अनुभवों को यथार्थ रूप में व्यक्त करते हैं।

आधुनिक युग-बोध :- प्रयोगवादी कवियों ने यातना, घुटन, संत्रास, कुंठा, द्वंद और निराशा को अपने काव्य का विषय बनाया। वर्तमान जीवन के कटु सत्य को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त किया गया है। प्रयोगवादी कविता में मानव सत्ता की अभिव्यक्ति हूई। दुख जीवन का कटु सत्य है, उस सत्य का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी अभिव्यक्ति अज्ञेय बड़े सटीक शब्दों में करते हैं -

"दुख सबको मांजता है
और
चाहे सबको मुक्ति देना वह न जाने किन्तु
जिनको मांजता है,
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें॥"

विचारधारा से स्वतन्त्रता :- प्रयोगवाद की महत्त्वपूर्ण विशेषता नामवर सिंह 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को मानते हैं। प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद मनुष्य के सत्य तक नहीं पहुँचा सकती। यथा -

यह जो दिया लिये तुम चले खोजने सत्य, बताओ
क्या प्रबन्ध कर चले
कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा
वही जलेगी सदा
अकम्पित, उज्ज्वल एकरूप, निर्धूम?

उपमानों की नवीनता :- प्रयोगवाद के कवियों ने पारंपरिक उपमानों की जगह नवीन उपमान, नवीन रूपक एवं नवीन अलंकारों के अन्वेषण किए हैं। यौन विषयक वर्जनाओं की अभिव्यक्ति हेतु विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया है। उपमानों के आभास अग्रांकित उदाहरण में देखे जा सकते हैं -

"प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया।
मेरे सपने इस तरह टूट गये जैसे भुंजा हुआ पापड़।
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की।

पूर्वदिशि में हड्डी के रंग वाला बादल लेता है।"

काव्यभाषा तथा छंद :- प्रयोगवादी कविता में सहज, सरल एवं संप्रेषणीयता भाषा का प्रयोग किया गया है। इन कवियों ने छंदमुक्त, लयमुक्त तथा तुकमुक्त रचनाएँ की। प्रयोगवादियों ने मुक्त छंद का प्रयोग किया, जिससे उनकी कविताएँ गद्यात्मक बन गयीं। उनकी कविताओं में भाव एवं लय समाहित है। इस संदर्भ में अज्ञेय की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

"उड़ गई चिड़िया
कांपी, फिर
थिर हो गई पत्ती।"

प्रतीक एवं बिम्ब :- प्रयोगवादी कवियों ने नए उपमान, नए प्रतीक एवं नए बिम्ब का प्रयोग किया। नए उपमानों की आवश्यकता मानते हुये अज्ञेय 'कलगी बाजरे की' कविता में लिखते हैं -

"देवता अब इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है॥"

अतः कहा जा सकता है कि प्रयोगवादी कविता एक विलक्षण कविता है। प्रयोगवादी कवियों ने प्रयोग पर बल दिया तथा यथार्थ की अभिव्यक्ति की।

7.6 नयी कविता

हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक सृजन-क्षेत्र में कई परिवर्तनकारी क्षण आये जिनमें हिन्दी कविता के क्षेत्र में 1950 ई. के आस पास एक बदलाव की दिशा देखने को मिलती है, उस समय की कविता को 'नयी कविता' नाम दिया गया, वस्तुतः यह प्रयोगवादी कविता के विकास का अगला चरण है। पश्चिम के विभिन्न वादों और विचारकों का प्रभाव नई कविता पर रहा। इनमें फ्रायडवाद, मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववाद का विशेष रूप से उल्लेख है।

'डॉ. रामविलास शर्मा' नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। नयी कविता का आरंभिक समय हम 1954 ई. के तीसरी 'तार सप्तक' को भी मान सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में लाखों लोगों की मौत हुई, चारों ओर हिंसा तथा दंगे फैले हुये थे। इस इस परिस्थिति से अस्तित्ववाद का जन्म हुआ। अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव नयी कविता के कवियों पर भी पड़ा। आजादी से लोगों को जो उमीदें थी वह आजादी के बाद मोह भंग हो गया। इस धारा के कविता में असंतोष और अस्वीकृति का स्वर विद्यमान है। नयी कविता नयी परिस्थितियों में संघर्षरत मानव के भोगे हुये यथार्थ के जीवन का सत्य है। अतः नयी कविता के कवियों के पास नयी दृष्टि, नयी विषय वस्तु, नयी सोच, नया सौन्दर्य तथा नया शिल्प है। इसमें आधुनिक जीवन का बोध, अकेलापन, टूटन आदि लक्षित होते हैं । नई कविता में दो तत्व प्रमुख हैं- अनुभूति की सच्चाई और बुद्धिमूलक यथार्थवादी दृष्टि। वह अनुभूति क्षण की हो या एक समूचे

काल की, किसी सामान्य व्यक्ति की हो या विशिष्ट पुरूष की, आशा की हो या निराशा की, अपनी सच्चाई में कविता के लिए और जीवन के लिए भी अमूल्य है। नई कविता में बुद्धिवाद नवीन यथार्थवादी दृष्टि के रूप में भी है और नवीन जीवन-चेतना की पहचान के रूप में भी। यही कारण है कि तटस्थ प्रयोगशीलता नई कविता के कथ्य और शैली-दोनों की विशेषता है।

प्रमुख कवि :

जीवन को पूर्णरूपेण 'जीवन-जीने की लालसा' और सत्य मानकर स्वीकार करने के रूप में देखे जाने वाले 'नयी कविता' के प्रमुख कवियों में हमें विषय वैविध्य देखने को मिलता है। अज्ञेय, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर जैसे कवि जहाँ प्रयोगवादी थे, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह जैसे कवि मार्क्सवादी तो धर्मवीर भारती, कुँवरनारायण जैसे कवि प्रगतिवादी थे। नयी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय आग्रंकित है -

अज्ञेय :- 'तार सप्तक' पत्रिका के संपादक अज्ञेय का मानना था कि जीतने भी काव्य के प्रतिमान है, सारे पुराने व मैले हो गए हैं, अतः कविता में नये प्रतिमानों कि आवश्यकता है। अज्ञेय की कविताएँ आकार में भले छोटी हों पर अर्थ की दृष्टि से बहुत गहरे और व्यंग्यपूर्ण होती हैं। उदाहरण के लिए उनकी 'कलगी बाजरे की' तथा 'साँप के प्रति' कविता को देखा जा सकता है।

धर्मवीर भारती :- इन्होंने मिथकों की नयी व्याख्या की। इनकी कृतियों में रूमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'अंधा युग', 'ठंडा लोहा', 'कनुप्रिया', 'सात गीत वर्ष' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

रघुवीर सहाय :- रघुवीर सहाय 'दूसरा सप्तक' के प्रसिद्ध कवि हैं। उनकी कविताओं में सामाजिक जागरूकता मिलती है। बदलाव के स्वर इनकी कविताओं में लक्षित होता है। वे जनपक्षीय कविता की रचना करते हैं। 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसों-हँसो जल्दी हँसो', 'लोग भूल गए हैं' आदि इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

मुक्तिबोध :- मुक्तिबोध नयी कविता के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। उनकी रचनाएँ : 'ब्रह्मराक्षस', 'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्म-कथन', 'चाँद का मुह टेढ़ा है' आदि है। सर्व-स्वानुभूति के स्वर उनकी कविता की पंक्तियों में प्राप्त होते हैं -

दुख तुम्हें भी है,
दुख मुझे भी।
हम एक ढहे हुए मकान के नीचे
दबे हैं।

जीवन में आने वाले संघर्षों के प्रति अंतर्द्वंद्व भाव से अभिव्यक्त मुक्तिबोध की काव्य-पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

"पीस गया वह
दो कठिन पाटो के बीच

ऐसी ट्रेजेडी है नीच।"

मुक्तिबोध के काव्य में जीवन और समाज में व्याप्त करुणा, विसंगति, विडम्बना और अराजकता का स्वर है। इन्होंने जीवन की कटुता, संत्रास आदि को अनूठे ढंग से व्यक्त किया है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में आरंभ में व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, किन्तु बाद में वे प्रगतिशील काव्याधरा की ओर झुकें। इनकी कविता में आत्मीयता व निजता का भाव है। सहज, सरल व सपाट भाषा में इन्होंने अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति की है। 'काठ की घंटिया', 'जंगल का दर्द' इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं

प्रमुख विशेषताएँ :

सत्यतः नयी कविता कोई वाद नहीं है, जो अपने कथ्य और दृष्टि में सीमित हो। कथ्य की व्यापकता और सृष्टि की उन्मुक्तता नई कविता की सबसे बड़ी विशेषता है। नयी कविता में वस्तुतः दो तरह की धाराएँ हैं। एक धारा वो थी जो अस्तित्ववाद तथा आधुनिकतावाद से प्रभावित थी तो दूसरी मार्क्सवाद से। नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं -

मोहभंग की अभिव्यक्ति :- व्यक्ति में बढ़ती हुई बेरोजगारी,अत्याचार ने निराशा व कुंठाएँ पैदा कर दी। इन सारे परिस्थितियों से लोग घुटन महसूस करने लगा था। नयी कविता के कवियों ने अपनी वाणी द्वारा उन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की; जिस यथार्थ को वे जी और अनुभव कर रहे थे। गिरिजाकुमार माथुर ने इस तरह के भावों को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है -

"जिंदगी है भार हुई
दुनिया है बहुत बोर
दंभी पाखंडी बहुरूपिये
हैं बड़े लोग।"

धर्मवीर भारती 'ठंडा लोहा' में कुंठा और घुटन के भाव की अभिव्यक्ति करते हुये लिखते हैं -

"अपनी कुंठाओं की
दीवारों में बंदी
मैं घुटता हूँ।"

अनुभूतिपरकता :- अनुभूति की अभिव्यक्ति नयी कविता में प्रधान है। मनुष्यों का दर्द मूलतः एक है और आज का कवि बड़ी ईमानदारी के साथ, उसे संवेदनापूर्ण तरीके से अभिव्यक्त करता है। अज्ञेय के शब्दों में

"आखेँ थी,
दर्द सभी में था
जीवन का दर्द सभी ने जाना था।"

क्षणवाद की अनुभूति :- नयी कविता जीवन के साथ चलने की आग्रह करती है। आज का युग मानव क्षण को महत्त्व देता है। नये कवि की दृष्टि में प्रत्येक क्षण का महत्त्व है। क्षण की

अनुभूति कवि को सदैव एक सी नहीं लगती। जीवन में कभी सुख का क्षण आता है तो कभी दुख का। रामदारश मिश्र लिखते हैं -

"मैंने क्षण-क्षण
तीखे मीठे अनुभवों को पिया है।"

अकेलापन तथा अजनबीपन :- बढ़ते औद्योगीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला, असहाय और स्वार्थी बना दिया है। नयी कविता में व्यक्ति के उस अकेलेपन और अजनबीपन के भाव को व्यक्त किया गया है। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में इस तरह के भाव बार-बार आते हैं। उदाहरण के लिए देखें -

"सच मानो मैं अकेला हूँ
इतना अकेला जितना प्रत्येक नक्षत्र
एक दूसरे से।"

वैयक्तिकता :- नयी कविता में व्यक्ति-विशेष की आशा, निराशा, आस्था-अनास्था की अभिव्यक्ति हुई है। भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद प्रमुख है नयी कविता में। नयी कविता के कवियों ने अपनी कविता में अतिशय वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति की है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में -

"मेरी प्यास सामूहिक प्यास नहीं
मेरी प्यास अपनी है
अपनी मर्यादा से प्रतिष्ठित है।"

काव्य-भाषा :- आज का कवि समस्त शासन और व्यवस्था तंत्र को तोड़ने के साथ भाषा तंत्र को भी तोड़ना चाहता है। नयी कविता मे संकोच और झिझक नहीं है। कवि धूमिल के शब्दों में -

"न कोई छोटा है न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर एक आदमी
एक जोड़ी जूता है"

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि नई कविता हिन्दी काव्य के विकास का एक महत्त्वपूर्ण सोपान है। प्रोफेसर महावीर सरन जैन का कथन है कि "हिन्दी की नई कविता पर सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि उसमें अतिरिक्त अनास्था, निराशा, विशाद, हताशा, कुंठा और मरणधर्मिता है। उसको पढ़ने के बाद जीने की ललक समाप्त हो जाती है, व्यक्ति हतोत्साहित हो जाता है, मन निराशावादी और मरणासन्न हो जाता है। लेकिन यह कि नई कविता ने पीड़ा, वेदना, शोक और निराशा को ही जीवन का सत्य मान लिया है। नई कविता सामाजिक यथार्थ तथा उसमें व्यक्ति की भूमिका को परखने का प्रयास करती है। इसके कारण ही नई कविता का सामाजिक यथार्थ से गहरा संबंध है। परंतु नई कविता की यथार्थवादी दृष्टि काल्पनिक या आदर्शवादी मानववाद से संतृष्ट न होकर जीवन का मूल्य, उसका सौंदर्य, उसका प्रकाश जीवन में ही खोजती है।

5.7 नवगीत

साठवें दशक के आसपास जब कविता- नई कविता के रूप में विकसित हो रही थी तब गीत- नवगीत के रूप में विकसित हुआ। नई कविता ने तुक और छंद के बंधन तोड़ दिये लेकिन नवगीत इन सबके साथ रहते हुए नवीनता की ओर बढ़ा। निराला ने अपनी एक रचना में इस ओर संकेत करते हुए कहा है- नव गति, नव लय, ताल, छंद नव। यही आगे चलकर नवगीत की प्रमुख प्रवृत्तियाँ या विशेषताएँ भी बनीं। इसके साथ साथ नवगीत में नया कथन, नई प्रस्तुति, प्रगतिवादी सोच, नए उपमान, नए प्रतीक, नए बिम्ब, समकालीन समस्याएँ और परिस्थितियाँ प्रस्तुत करते हुए इस विधा को नई दिशा दी गई। यही एक गीत को नवगीत बनाते हैं। आवश्यक नहीं कि एक नवगीत में इन सभी चीज़ों का समावेश हो लेकिन होना ज़रूरी है। नवगीत में छंद आवश्यक है लेकिन वह पारंपरिक न हो, नया छंद हो और उसका निर्वाह भी किया गया हो। छंद में बहाव हो लय का सौंदर्य हो, ताकि गीत में माधुर्य बना रहे। हिंदी वाङ्मय के आधुनिक काल में रचे जा रहे साहित्य में समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा 'नवगीत' है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह 1960 ई. के उपरांत नवगीत परम्परा को स्वीकार करते हैं तथा अज्ञेय को ही इस परम्परा का सूत्रधार मानते हैं। नई कविता का ही गीतात्मक रूप नवगीत है। गीतात्मकता जब नई कविता से जुड़ गई तो नवगीत कहलाने लगी। अतः इसकी रूपरेखा छठे दशक के उतरार्द्ध में तैयार की गई। अज्ञेय, शम्भूनाथ सिंह, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, श्रीकांत वर्मा, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि कवियों ने नवगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नवगीत के सशक्त समर्थक डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार - "नयेपन को स्पष्ट करने के संबंध में आज के गीतों का 'नवगीत' नाम सार्थक हो सकता है, किन्तु फिर भी लगता है कि यह एक आंदोलन बन गया है, क्योंकि नवगीत अपने को समूची नयी कविता का अंग न मानकर स्वयं में पूर्ण समझ रहा है तथा अनेक सम्मेलनी गवैये गीतकार गीत को नवगीत बना देने वाले कुछ उपकरणों को चुन-चुनकर सायास आयोजन द्वारा नवगीत रचना कर रहे हैं।" रामदरश मिश्र नवगीत को परिभाषित करते हुये लिखते हैं - "अनुभूति की सच्चाई, नवीन सौंदर्य बोध, आकार लघुता, नवीन बिम्ब प्रतीक, उपमान योजना, इसकी सामान्य विशिष्टता है, इन सभी गीतों में लोक जीवन का रस है।"

कस्बा-कस्बा गाता चल ओ साथी
टोले-गाँव जगाता चल ओ साथी
रात रहे जो भूखे उनकी रोटी
कैसे छिनी बताता चल ओ साथी
सत्तू औ' गुड़ जिनको नहीं कलेवा
लंच-डिनर समझाता चल ओ साथी । (लाल नील धारा,पृ.14)

डॉ. शंभुनाथ सिंह द्वारा दी गयी नवगीत की परिभाषा - "नवीन पद्धति और विचारों के नवीन आयामों तथा भाव सरणियों को अभिव्यक्त करने वाली गीत जब भी और जिस युग में लिखे

जायेंगे, नवगीत कहलायेंगे।" जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से अपना संबंध नवगीत जोड़ता है। गीतों को माध्यम बनाकर जीवन के अनुभवों को उतारा गया। नवगीतों में लोक जीवन की अभिव्यक्ति, वर्तमान विसंगतियों का चित्रण, सहज संप्रेषणीयता तथा आम आदमी के दुख और संघर्ष के गीत गाये गए। यथा-

"रूप के भाग में चीर
अपने तो भाग, मजदूर के भाग हैं
भाल पै स्याम लकीर।"

- **रमेश रंजक**

नवगीत में चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सरल व सपाट भाषा का प्रयोग किया गया है। यहाँ सृजनात्मकता का भी प्रयोग हुआ है। इसमें गद्यात्मकता का समावेश है। जीवन से लिए गए प्रतीक एवं जीवन के मर्मस्पर्शी बिंबों के चित्र विद्यमान है। आर. पी. सिंह 'गीतांगिनी'(1958) के अनुसार प्रगति और विकास की दृष्टि से उन रचनाओं का बहुत मूल्य है, जिनमें नयी कविता की प्रगति का पूरक बनकर 'नवगीत' का निकाय जन्म ले रहा है । नवगीत नयी अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा ।

5.8 समकालीन कविता व अन्य काव्य परिवर्तन

हिंदी साहित्येतिहास के आलोचकों के अनुसार प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद कविता का विकास समकालीन कविता के रूप में देखा जा सकता है। सं 1960 ई. के बाद हिन्दी कविता को अनेक नाम दिये गए, जिनमें प्रमुख हैं - समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता, सहज कविता, अति कविता, नूतन कविता, विचार कविता आदि। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नयी कविता आंदोलन के बाद जिस काव्य धारा आंदोलन का आगमन होता है उसे समकालीन कविता कहा गया।

जनता में जो उमंग व उत्साह था वह स्वतन्त्रता के बाद मोह भंग हो गया। समकालीन कविता समाज की मान्यताओं से मोह भंग करती है। सूखा, भूखमरी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं ने जनता के कष्टों को बढ़ा दिया। अतः साठोत्तरी कविता में अस्वीकृति, असंतोष और विद्रोह का स्वर बहुत स्पष्ट रूप में सामने आया। यह स्वर कहीं व्यंग्य रूप में तो कहीं खुले रूप में उभरे। जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन परिवेश में अभिव्यक्त किया गया। समकालीन कवियों में प्रमुख हैं - रघुवीर सहाय, धूमिल, अरुण अमल, दूधनाथ सिंह, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, जगदीश चतुर्वेदी, रमेश रंजक आदि।

प्रमुख विशेषताएँ :

विचारों से मुक्ति :- समकालीन कविताओं में राजनीतिक विचारधारा से कवियों का कोई सरोकार नहीं है। समकालीन कवियों के लिए व्यक्ति सत्ता तथा उनकी अनुभूति ही काव्य तथा जीवन का दर्शन है। उदाहरण -

"कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर,
फिर बेचेंगे क्रांति की
कुछ और लोग, सारा समय
कसमें खायेंगे लोकतन्त्र की।"

औद्योगिक सभ्यता :- बढ़ते मशीनीकरण एवं औद्योगीकरण ने व्यक्ति को समाज में अकेला व स्वार्थी बना दिया है। महानगरों की भीड़ में आज व्यक्ति अकेला हो गया है। इसलिए समकालीन कवियों ने औद्योगीकरण की आलोचना की।

नारी के प्रति दृष्टिकोण :- समकालीन कविता में नारी के प्रति पतनोन्मुख दृष्टिकोण है। नारी के प्रति असम्मान का भाव देखा गया है। नारी को समाज ने हमेशा से ही वस्तु के रूप में ही देखा है, उसी सच्चाई को समकालीन कवि अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं।

व्यर्थता-बोध :- पराजय एवं विद्रोह की भावना ही समकालीन कवियों को व्यर्थता-बोध की ओर ले गयी। इन्हें यथार्थ के प्रति कुंठा ने असहाय बना दिया । इनके यहाँ विरोध के स्वर में ऊब है, व्यंग्य नहीं। देखें -

"चारों तरफ मुर्दानी है
भीड़ है और कूड़ा है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है।"

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में भारतीय समाज कि जड़ता, विसंगति, विडम्बना, आक्रोश की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से हुई है। जीवन की निर्भय वास्तविकताओं से जो अनुभूतियाँ मन में उभरती है समकालीन कवि उसी अनुभूति को अभिव्यक्त करते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. 'नयी कविता' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ?

नयी कविता' की शुरुवात 'नयी कविता' पत्रिका से किसने मानी है?

15. नयी कविता के एक प्रमुख कवि का नाम बताइए।

किस कवि की रचनाओं को 'वृहत्तर जिज्ञासा का काव्य' कहा गया?

किस कवि की कविताओं ने समकालीन कविता को प्रभावित किया?

18. नवगीत की रूपरेखा कब तैयार की गयी?
19. सात के दशक के बाद की कविता को क्या नाम दिया गया?

लित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएँ

चेतना सदैव झकझोरने, जगाने तथा अपने इर्द-गिर्द देखने की प्रेरणा देती है। हिन्दी में दलित चेतना, स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना की रचनाएँ काफी मात्रा में होती आ रही हैं । साहित्य से आत्म चेतना का बल प्राप्त हुआ। दलित साहित्य की शुरुआत हीरा डोम द्वारा रचित 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन' से दलित-साहित्य की रचनाएँ फलने-फूलने लगती हैं । 'सदियों का संताप' एवं 'तुम सब क्या करोगे' वाल्मीकि जी कृत काव्य-संग्रह महत्त्वपूर्ण हैं । श्योराज सिंह, डॉ वियोगी, डॉ. सी. वी.भारती, निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभोरे, चन्द्रकान्त बराठे, डॉ सुमन पाल, रमणिका गुप्ता आदि उल्लेखनीय रचनाकार हैं । हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना तथा जनजातीय चेतना की काफी मात्रा में कविताएँ लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं।

5.9.1 निराला की कविता में दलित एवं जनजातीय चेतना

निराला का महत्वपूर्ण स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य में है। निराला का योगदान दलित चेतना से जुड़ी कविताओं में रहा। रामविलास शर्मा निराला को क्रान्ति का कवि कहते हैं। निराला की क्रान्ति हर तरह के बंधन से मुक्ति चाहती है। उनकी रचनाओं में दलितों तथा पीड़ितों के प्रति गंभीर मानवीय करुणा है। दलित-शोषित, सामान्य जन के संस्पर्श की एक शक्तिशाली उद्घोषणा उनकी काव्यात्मक उपलब्धि है -

"मैंने 'मैं' शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई।"

निराला ने अपनी पक्षधरता, अपनी निष्ठता और सरोकारों को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित किया है। दलित तथा पिछड़ों से जल्दी जल्दी पैर बढ़ाकर अपने बराबर खड़े होने की बात करते हैं-

"जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली, किसानो की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली, खोलेंगे अंधेरे का ताला

एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।"

निराला सामाजिक विषमता के विरुद्ध प्रभावी आवाज़ उठाते हैं। उनके काव्य का मूल स्वर विद्रोही एवं क्रांतिकारी भावनाओं से युक्त है। यथा -

"चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुये।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुये॥"

निराला के गीतों में सदियों से पीड़ित, उपेक्षित एवं प्रताड़ित दलितों के प्रति करुणा है। उन्हें यह देखर कर क्षोभ होता है कि लोग वानरों को तो पुए खिला रहे हैं, किन्तु वहीं दीन-हीन मानव की उपेक्षा करने में लज्जा नहीं आती। अपनी कविता में इसे ही चित्रित करते हुये निराला लिखते हैं -

"मेरे पड़ोस के वे सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन।
झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं 'धन्य श्रेष्ठ मानव'॥"

निराला की कविताओं में सामाजिक विषमता पर आक्रोश व्यक्त हुआ है। अपनी कविताओं के माध्यम से वे शोषण का विरोध, दलितों की दशा का चित्रण करते हुये उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं तथा साथ ही पूँजीपतियों की प्रवृतियों का विरोध किया। 'तोड़ती पत्थर' नाम कविता में निराला एक ऐसी गरीब स्त्री का चित्रण करते हैं, जो कि हृदयस्पर्शी है -

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।"

निराला 'भिक्षुक' नामक कविता में एक गरीब भिक्षुक की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हैं -

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली को फैलाता।"

'कुकुरमुत्ता' कविता में सामाजिक विषमता की बात करते हुये पूँजीपतियों को वे कहते हैं कि उनकी रंगो-आब, चमक-दमक गरीबों के शोषण पर आधारित है -

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, जो पाई खुशबू रंग-ओ-आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।"

अतः देखा जा सकता है कि 'कुकुरमुत्ता' में दलित चेतना का व्यंग्यात्मक विस्फोट मिलता है तो 'तोड़ती पत्थर' में मजदूर वर्ग की स्थिति मज़दूरनी के प्रतिरूप में मिलता है। निराला के काव्य चेतना का मूल आधार सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव को मुक्ति दिलाना है। इसी मुक्ति के लिए निराला कहते हैं - 'जागो फिर एक बार'।

5.9.2 नागार्जुन एवं जनचेतना

कवि नागार्जुन एक जनवादी कवि के रूप में अपने समय-समाज की विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। नागार्जुन की कविताओं में समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, अकाल तथा अभावभरी जिंदगी का यथार्थ आदि दिखाई देता है। 'अकाल और उसके बाद' कविता में नागार्जुन 'भूख' का चित्रण कुछ इन शब्दों में करते हैं -

"कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास॥
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त॥"

जनवादी क्रान्ति का व्यापक रूप नागार्जुन के काव्य में सुनाई देता है। उनके यहाँ मध्यवर्ग प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित न हो कर भी क्रान्ति की प्रक्रिया में शामिल है। प्रशासन तंत्र से उसका संबंध है। कवि ने मजदूर, किसान, व्यापारी, नेता, जमींदार सब पर दृष्टिपात करते हुये अपने काव्य में उसका चित्रण यथार्थ रूप में किया है। किसान कवि नागार्जुन की भूमिका एक क्रांतिकारी कवि के रूप में अति महत्वपूर्ण है। 'लाल भवानी' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

"सेठों और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम,
खेत-खान-दूकान-मिलें सरकार करेगी दखल तमाम;
खेत-मजूरों और किसानों में जमीन बंट जायेगी;
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मंडरायेगी;

x x x

नौकरशाही का यह रद्दी साँचा होगा चूराम-चूर,
सुजला, सुफलता के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान-मजदूर;
इन कानों को तृप्ति मिलेगी, तब उस मस्त तराने में,

लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तेलंगाने में।"

नागार्जुन के जनवादी क्रान्ति स्वर एक-एक शब्द में, एक-एक पंक्ति में मुखरित हुये हैं। नागार्जुन लिखते हैं - "कुछ विद्वानों का हिन्दी विरोधी रुख मिथिला निवासियों के लिए सर्वथा घातक है।....हिन्दी मिथिला के अंदर घुस अवश्य आई है।" (चुनी हुई रचनाएँ - 3) हिन्दी और मैथिली के बीच हिन्दी और तमिल की अपेक्षा दूरी बहुत कम है इसलिए हिन्दी घुस आई है। जातीय चेतना का अंतर्विरोध आंचलिक बोध से स्पष्ट है। 1962 में यह चेतना उन्नत हुई, जब नागार्जुन ने कहा कि - "हमारी केंद्रीय सरकार अंग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती, हिन्दी-बांग्ला-तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी।" केंद्र सरकार की नीति के समतुल्य विचार करने पर यह अधिक स्पष्ट हुआ कि विभिन्न जातियों की भाषा-संस्कृति का दमन हिन्दी नहीं कर रही, अपितु अंग्रेजी कर रही है।

1975 में 'हुकूमत की नर्सरी' कविता में नागार्जुन के स्पष्ट होते हैं-

"दुनिया हमसे पूछती है
लोथ की अखंडता किस काम की?
पुराने रोगों के अपने ही किटाणुओं ने ही तो
तुमको लोथ बना रखा है न?
तमिलनाडु, बंगाल, नागाभूमि, मिजोरम, केरल...
गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, आंध्र...
इनको तुम कब तक नयी दिल्ली की जमींदारी बनाकर रखोगे
क्यों नहीं इन सभी प्रदेशों का 'संघशासन'
फेडरल राज्य हो, संयुक्त राज्य हो?"

5.9.3 डॉ॰ रामकुमार वर्मा एवं दलित चेतना

दलित चेतना के रूप में रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'एकलव्य' को साठोत्तरी कविता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। यद्यपि 'एकलव्य' छठे दशक से पूर्व लेखनी का विषय बन चुका था, साहित्य के क्षेत्र में वह छठे दशक के आस-पास ही प्रकाशन के रूप में प्रस्तुत था। 'एकलव्य' में सदियों से उपेक्षित दलित-चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना परिचय देता है। वह परिचय निश्चित ही दलित चेतना को अमरता प्रदान करती है -

"जय! गुरुदेव!
एकलव्य दास हूँ!
है निषाद वंश मेरा, श्री हिरण्यधनु है मेरे पिता
तृण के समान हूँ मैं मार्ग में जो पदों का
भर बार-बार निज शीश ले,

बढ़ता है नवल हरीतिमा में मोद से।
एक ही चरण से खड़ा है जन्म काल से
अपनी तपस्या में। मैं एक ऐसा तृण हूँ।"

तथाकथित दलित व्यक्तियों के प्रति तत्कालीन सामाजिक स्थिति बुरी थी। दलित समुदाय से आए किसी भी दलित व्यक्ति को अपना शिष्य बनाना तथाकथित उच्च वर्ग के लोग पाप समझते थे। यही कारण था कि दलित निषाद पुत्र एकलव्य को द्रोणाचार्य धनुर्विद्या हेतु अपना शिष्य नहीं बनाते। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर बाण-विद्या का अभ्यास किया और अद्वितीय तथा महान धुनर्धुर बना। द्रोणाचार्य जैसे सवर्ण विद्वान को यह सहन नहीं हुआ और वे गुरु दक्षिणा में एकलव्य से उसके हाथ का अंगूठा मांग लिया -

"गुरु-प्राण-पूर्ति करे सब काल के लिए
जय गुरुदेव! यह रही मेरी दक्षिणा।
क्षण में ही अर्धचंद्र-मुख-बाण से,
तूर्ण से निकाल कर लिया बाम कर में
गुरु-मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से।"

7.9.4 नरेश मेहता के काव्य में दलित-चेतना

साठोत्तरी कवि नरेश मेहता के द्वारा रचित सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'शबरी' में दलित-चेतना मुखरित हुई है। इस रचना में नरेश मेहता दिखाते हैं कि शबरी नामक दलित स्त्री कभी भी सवर्णों के तिरस्कार का शिकार नहीं हुई। सवर्ण नारी सूर्पणखाँ का नाम जहाँ कोई लेना नहीं चाहता, वहीं दूसरी ओर असवर्ण अथवा दलित नारी शबरी को महर्षि बाल्मीकी ने भी अमरता प्रदान की है। साठोत्तरी कविता में दलित-चेतना की प्रतीक शबरी को सम्माननीय स्थान दिया गया है। यथा -

"त्रेता युग की व्यथामयी
यह कथा दीन नारी की
राम-कथा से जुड़कर
पावन हुई, उसी शबरी की।
बदल गया था सतयुग
का सारा समाज त्रेता में,
वन-अरण्य की ग्राम्य-सभ्यता
नागर थी त्रेता में।"

'शबरी' नामक कविता में नरेश मेहता ने दलित चेतना को साकार किया है। भील जाति की स्त्री शबरी भले ही दलित महिला थी किन्तु साहित्य में उनका महत्त्व श्रेष्ठ था। शबरी महान तपस्विनी त्याग तथा परिश्रम की साक्षात प्रतिमूर्ति थीं। शबरी के माध्यम से नरेश मेहता दलित चेतना को साकार कर के देखते हैं -

"शबरी की दिनचर्या अब

पूजा प्रबंध था करना,
अब थी अभिभावक पूरी
सब पर निगरानी रखना।
अब कभी-कभी प्रवचन में उल्लेखित होती शबरी
मानो वह परम सती हो
हो भक्त शिरोमणि शबरी।"

5.9.5 जगदीश गुप्त का काव्य और दलित चेतना

साठोत्तरी कविता के दलित चेतना काव्य में जगदीश गुप्त का महत्वपूर्ण योगदान है। काव्य के क्षेत्र में जगदीश गुप्त द्वारा रचित दलित-चेतना पर आधारित काव्य 'शम्बूक' मील का पत्थर साबित हुआ। 'शम्बूक' नामक पात्र पर आधारित इस काव्य की रचना हुई, जो महान तपस्वी था। भगवान राम द्वारा शम्बूक के घोर तपस्या करते समय उसके सिर को काट दिया गया। दलितों के प्रति शोषण, अपमान तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। साठोत्तरी कविता में इस कलंक को धोने का प्रयास किया गया है। जगदीश गुप्त द्वारा रचित 'शम्बूक' उसका अच्छा उदाहरण है -

"हे राम!
तुम्हारी रची
रक्त की भाषा में
हर बार
तुम्ही से कहता है
शम्बूक मूक,
तज कर्म-वेद-पथ,...
मानव समाज की
ऊर्ध्वमुखी मर्यादा में
तुम गए चूक।"

तपस्या करने का अधिकार हर व्यक्ति को होता है चाहे वह तथाकथित उच्च वर्ग का व्यक्ति हो या फिर तथाकथित निम्न वर्ग का ही व्यक्ति क्यों न हो। उच्च तथा निम्न वर्ग समाज की देन है।

5.9.6 रामधारी सिंह दिनकर और दलित तथा जनजातीय चेतना

रामधारी सिंह दिनकर साठोत्तरी हिन्दी कविता में दलित तथा जनजातीय चेतना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध उनकी कविता विद्रोह की आवाज़ बुलंद करती है। उनकी रचनाएँ दलितों, शोषितों, उपेक्षितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दर्शाती हैं । साथ ही उनकी कविता सामाजिक जड़ता तथा सामाजिक विषमता को तोड़ने के लिए संघर्ष का भाव जगाती है। दिनकर की इस विधान की सर्जन है 'रश्मिरथी' जिसका नायक कर्ण उपेक्षितों,

दलितों एवं अपमानितों का प्रतिनिधि है। 'महाभारत' तथा 'रश्मिरथी' के कर्ण में जो भिन्नता है वह कवि की दलित-चेतना की उपज है। अतः इसी परिप्रेक्ष्य में 'रश्मिरथी' दलित-चेतना का दस्तावेज है।

वर्ण-व्यवस्था और संघर्ष से उपजे जातिवाद के नाकार और विद्रोह का चिंतन है 'दलित-चेतना'। जातिवाद का विरोध करते हुये दिनकर ने 'रश्मिरथी' में कर्ण-चरित के निर्माण को नयी भावना की स्थापना का प्रयास कहा है। यहाँ जाति-धर्म के ठेकेदारों से रश्मिरथी का कर्ण सीधे टकराता है। यह टकराव एक नयी दिशा की ओर इशारा करती है। कर्ण दलित, प्रताड़ित, निरीह, निर्धन जन का सखा सहचर बनकर विधि-विधान के विरुद्ध खड़ा होता है -

"जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निरीह हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बंधु, सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।"

'रश्मिरथी' खंड काव्य का आरंभ शौर्य प्रदर्शन के बहाने इस सामाजिक विसंगति के विरोध से ही हुआ। हस्तिनापुर में आयोजित शौर्य प्रदर्शन में पहुँचकर कर्ण का अर्जुन को ललकारना दृष्टव्य है -

"तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ।
चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।"

कर्ण जातिवाद का विरोध करते हुये कहता है -

"जाति-जाति रटते, जिनकी पूजा केवल पाषंड।
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदंड।"

कर्ण के माध्यम से दिनकर ने दलितों में एक नयी चेतना का संचार किया। आधुनिक मानव को पौरुष के प्रति आस्थावान बनाने में कर्ण से अधिक उपयुक्त उदाहरण कोई नहीं हो सकता। कवि कर्ण के माध्यम से व्यक्ति-मानव की प्रतिष्ठा का प्रयास कराते हैं। दिनकर के द्वारा रचित 'परशुराम की प्रतीक्षा' कृति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस कृति में कवि उसी यथार्थ को प्रस्तुत करते हैं कि भेदभाव समाज को कमजोर बना रही है।

"वैषम्य घोर जब तक यह शेष रहेगा,
दुर्बल का दुर्बल यह देश होगा।"

5.9.7 सुभद्रा कुमारी चौहान एवं स्त्री चेतना

आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रतिनिधि कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान भारतीय स्वाधीनता संग्राम की प्रथम राष्ट्र कोकिला के रूप में पहचानी जाती हैं। इसी काव्यधारा की भूमि पर उनका काव्य पुष्पित व पल्लवित हुआ है। सुभद्रा कुमारी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के उन

रचनाकारों में से एक हैं जो सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। उन्होंने साहित्य का सदुपयोग राजनीतिक आंदोलन के लिए किया।

जब स्त्रियों को केवल परदे के अंदर रहने की अनुमति हुआ करती थी, उसे केवल अक्रियशील प्राणी के रूप में देखा जाता था, ऐसे समय में सुभद्रा कुमारी ने स्त्री चेतना को जगाया। स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाने में उनका सम्पूर्ण जीवन व्याप्त रहा। उसके अतिरिक्त साहित्य लेखन तथा सामाजिक प्रगति एवं नारी जागरण के लिए उनका जीवन समर्पित रहा। 'झाँसी की रानी' नामक कालजयी कविता लिखकर सुभद्रा कुमारी ने रानी लक्ष्मीबाई के साहस, वीरता व शौर्य का चित्रण किया। इस कविता के माध्यम से वे लक्ष्मीबाई की तरह समस्त नारी जाति को वीरांगना बनने की प्रेरणा देती हैं। इस कविता के विषय में सुभद्रा कुमारी की बेटी सुधा चौहान ने अपनी पुस्तक 'सुभद्रा कुमारी चौहान' में लिखा है - " 'झाँसी की रानी' कविता वह मशाल थी जिसके प्रकाश की किरणों से गुलामी का अंधेरा कट रहा था। सुभद्रा के हृदय का देश-प्रेम इस कविता के माध्यम से न जाने कितने दिलों में भी देश-प्रेम की लौ जला देता था।"

'झाँसी की रानी' कविता आधुनिक युग की ऐसी हिन्दी वीर कविता है, जो अपनी सहज-सरल भाषा के कारण लोक मानस का अंग बना हुआ है। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ देखें -

"सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी

*** *** *** ***

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए कवयित्री पंद्रह करोड़ भारतीय महिलाओं से आह्वान करती हैं। अत्याचार और आक्रोश के विरुद्ध का स्वर उनकी 'विजया दशमी' नामक कविता में कुछ इस प्रकार मुखर होती है - **"पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ**

दहला दें ब्रह्मामण्ड सखी।
भारत-लक्ष्मी लौटाने को
रच दें लंका काण्ड सखी।"

5.9.8 स्त्री चेतना और अरुण कमल की कविता

आधुनिक युग के कवियों में अरुण कमल का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की आवाज़ बुलंद की है। उनकी रचनाओं में मानवीय व्यवस्था के निर्माण हेतु आकुलता परिलक्षित होती है। 'स्वप्न' नामक कविता में वे परंपरा के बीच जकड़ी हुई स्त्री की चेतनात्मक मनोस्थिति का चित्रण करते हैं -

"वह बार-बार भागती रही
बार-बार हर रात एक ही सपना देखती
ताकि भूल न जाये मुक्ति की इच्छा
मुक्ति न भी मिले तो बना रहे मुक्ति का स्वप्न

बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का यत्न"

स्त्री की उपस्थिति अरुण कमल की कविताओं में महत्वपूर्ण है। 'अपनी केवल धार' कविता-संग्रह में संग्रहित 'धरती और भार' शीर्षक कविता में कवि ने एक ऐसे गर्भवती नारी के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है जो डोल हाथ में टाँगे पानी भरने जाती है। कविता में कवि के डर को दिखाया गया है जो एक गर्भवती स्त्री को पानी भरते जाते देख रहा है। कवि को डर है कि रुखड़ी गली से होकर जाने से पेट डोल जाएगा और गर्भ का शिशु झूल जाएगा। जामुन की डाल-सी कमजोर हो गई उस गर्भवती नारी के चित्रण द्वारा कवि भारतीय स्त्रियों की स्थिति को चित्रित करते हैं। यहाँ अपने परिवार के लिए पानी लाने वाली उस गर्भवती स्त्री की विवशता का चित्रण इस कविता में हुआ है। देखें -

"दोनों हाथों से लटके हुए डोल
अब और तुम्हें खींचेंगे धरती पर
झोर देंगे देह की नसें
उकस जाएंगी हड्डियाँ
ऊपर-नीचे डोलेगा पेट
और थक जाएगा बउआ..."

अरुण कमल की एक अन्य कविता है 'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया'। इस कविता में कवि ने अपनी गली की उस कुबड़ी बुढ़िया की करुण कथा कही है जिसकी अचानक मृत्यु हो गई -

"अचानक ही चल बसी
हमारी गली की कुबड़ी बुढ़िया
अभी तो कल ही बात हुई थी
जब वह कोयला तोड़ रही थी
आज सुबह भी मैंने उसको
नल पर पानी भरते देखा।"

7.9.9 समकालीन अन्य कविताएँ एवं चेतना के स्वर

हिंदी साहित्य काव्यधारा में स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना को लेकर काफी मात्रा में कविताएँ लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं। यहाँ कवयित्री 'निर्मला पुतुल' का नाम उल्लेखनीय है। स्त्री की पीड़ा, उसके एकांत स्वरों को सुनती कवयित्री निर्मला पुतुल स्त्री के भीतर खौलते इतिहास को पढ़ने की चेष्टा करती हैं। वे लिखती हैं -

"बाबा, मत व्याहना उस देश में
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें"

सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुये कठपुतलियों सी नाचती हुई स्त्री की अन्तर्मन की पीड़ा को पढ़ने का प्रयास करती कवयित्री समाज से स्त्री को समझाते हुये लिखती हैं -

"क्या तुम जानते हो

पुरुष से भिन्न
एक स्त्री का एकांत
घर-प्रेम और जाति से अलग
एक स्त्री को उसकी अपनी जमीन
के बारे में बता सकते हो तुम।
बता सकते हो
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता।"

एक तरफ जहाँ कवयित्री स्त्री की खामोशी व अन्तर्मन की बात सुनती हैं तो दूसरी ओर अपनी दूसरी कविता में सबको नगाड़े की तरह बजने की कल्पना कर सबको जगाने की चाह रखती हैं -

"चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजें मेरे शब्द
और निकाल पड़ें लोग
अपने-अपने घरों से सड़क पर।"

दलित साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं को देखें तो इन्होंने जातिवाद से ग्रस्त और उसके संस्कारों की तिलमिलाहट को महसूस किया और अपनी कविताओं में व्यक्त किया। देखें - **"तुमने कहा-**

ब्रह्मा के पाँव से जन्मे शूद्र
और सिर से ब्राह्मण
उन्होंने पलटकर नहीं पूछा-
ब्रह्म कहाँ से जन्मा?"

समकालीन कविता दलित कविता के रूप में उनकी ओर से विद्रोह की आवाज़ बुलंद कर रही है। एक बड़ा हिस्सा समकालीन कविता के माध्यम से उनकी बोली में गूँजती है। आज की कविताओं में समाज में स्त्री की स्थिति तथा उसमें परिवर्तन काव्य में देखने को मिलती है। स्त्री पर केन्द्रित 'केरल की लोकधुन' पर अनामिका ने लिखी। जो बलात्कार को झेलती है, जिन्हें यातना तोड़कर बिखराती नहीं। यह कविता उन छोटी-छोटी लड़कियों की एहसास पर लिखी गयी है। कविता का कुछ अंश देखें - **"आरारी अरारिआरो...**

...उफ, अम्मा, मैंने भी
लेकिन हथियार नहीं डाले
कि जो बाजरा कूटकर
रोटियाँ खिलाई थीं तुमने-
मैंने उनकी
सैरियत तो दी-

मानो न, अम्मा, दी, बिलकुल दी...जल्दी तो हार नहीं मानी।
थोड़ा-सा खून बहा, उसके छपाके से बांबी के फूल रंग गए,
ओ अम्मा, ओ अम्मा-
मत रोओ लेकिन कि
एक छपाका खून ही तो था,
वो फिर से बन जाएगा।
....आरारी अरारिआरो..."

इस प्रकार समकालीन कविता में दलित चेतना, स्त्री चेतना एवं जनजातीय चेतना के स्वर मुखरित हुआ हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

20. 'शम्बूक' नामक काव्य किस कवि द्वारा रचित है?
21. किस कवयित्री को राष्ट्रीय-कोकिला कहा जाता है?
22. 'रश्मिरथी' की रचना किस कवि ने की?
23. 'परशुराम की प्रतीक्षा' नाम कृति किस कवि द्वारा रचित है?

7.10 सारांश

छायावाद काव्यधारा के बाद विभिन्न प्रकार के साहित्य की रचना हुई। रचनाओं के विषयों में विविधता होने के कारण इसे न छायावाद में रखा जा सकता था न किसी अन्य वाद के अंतर्गत बांधा जा सकता था। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा जो भारतेन्दु युग से चली आ रही थी उसका स्वर इस काल तक मुखर हुआ। निराला संवेदना व अनुभव के द्वारा जन-जीवन को अपनाते हैं। उनके काव्य में मार्क्सवाद या समाजवाद के दर्शन स्पष्ट रूप से सामने नहीं आते। उन्होंने यथार्थ को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

सं 1936 ई. में जहाँ पंत युगांत की घोषणा करते हैं वही सं 1939 ई. में युगवाणी और ग्राम्या की रचना करते हैं। पंत मार्क्सवाद, भौतिक-जीवन तथा जन-जीवन के सत्यों की ओर उन्मुख हुये। उन्होंने मार्क्सवादी सिद्धान्त की अभिव्यक्ति की है। वे ग्रामीण जीवन के विभिन्न छवियों का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टि से करते हैं।

महादेवी ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम 'गीति' को बनाया। छायावादी काव्य प्रकृति के समान इनके काव्य प्रकृति भी गीतात्मक है। 'दीपशिखा' उनकी महत्वपूर्ण काव्य कृति है। लौकिक संवेदना रहस्यवादी आभास ने एक पंक्ति में होकर नये का विस्तार काव्य में किया। इस कारण लौकिक मूर्तता, प्रत्यक्षता तथा तीव्रता वहाँ से विलीन हो जाती है। निजता उनके गीतों में प्रवाहमान रहती है। सूक्ष्म चित्रात्मकता उनके गीतों में व्याप्त है।

व्यक्तिवादी कवियों की दृष्टि रोमानी रही। वस्तु जगत के प्रति इन कवियों की प्रतिक्रिया भी अत्यंत भावुक रही है। इनकी कविताओं में आत्मसंपृक्ति और उत्तेजना मिलती है। जो बड़े स्पष्ट रूप से अपने वैयक्तिक प्रेम संवेग एवं सुख-दुख को व्यक्त करने के लिए छटपटाते रहते हैं। इनकी वेदना छायावाद कवियों की तरह सामान्य न होकर वैयक्तिक है जो अनुभव के बिम्ब को पूरी सफलता के साथ उकेरता है। व्यक्तिवादी गीति कविता 'मैं' को माध्यम बनाकर अपना अनुभव व्यक्त करती है। यहाँ 'मैं' अपने समूचे राग-विराग के साथ निर्व्याज भाव से स्वतः निकलता है। वैयक्तिक गीति काव्य में कहीं-कहीं प्रगतिवादी कविता जैसा विद्रोह ध्वनित हुआ। बच्चन के 'बंगाल का काल', नरेंद्र शर्मा के 'अग्निशस्य', अंचल की 'किरण बेला' तथा शंभुनाथ सिंह के 'मन्वंतर' आदि में। वैयक्तिक अस्वीकृति की प्रबल भावना तथा समाज में व्याप्त असंतोष की भावना के कारण इस धारा के कवियों में विद्रोही भावना दृष्टिगोचर होती है।

राष्ट्रीयता का अर्थ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा की कविता में सम्पूर्ण भारतवर्ष की एकता और अखंडता के रूप में विकसित हुआ। इस धारा की कविताओं में राष्ट्रीयता का जो स्वरूप आधुनिक काल में विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं - प्रथम अंग्रेजी शासन की स्थापना पूरे देश में होना, द्वितीय समस्त भारतीय प्रजा का अंग्रेजी शासन से उत्पन्न एक सम यातना का अनुभव करना, तथा तृतीय पूरे देश में स्वाधीनता आंदोलन और मुक्ति चेतना का प्रसार होना। इस काल में सबसे अधिक सशक्त कवि दिनकर थे। विचार एवं संवेदना का समन्वय इनके काव्यों में परिलक्षित होता है। राष्ट्रीयता का मूल रूप से चित्रण विदेशी शासन के अत्याचारों, उनसे प्रसूत जन-यातनाओं और जनता के मन में उठती हुई क्रोध, असंतोष की ललकारों के रूप में मुख्यता से हुआ है। दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, नवीन आदि कवियों की कविताओं में हम राष्ट्रीयता की झलक देखते हैं।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद का उदय हुआ, जो एक सशक्त साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा। प्रगतिवादी काव्यधारा से हिन्दी के कवि काफी प्रभावित रहें। इस काव्य धारा में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन तथा मुक्तिबोध आदि कवि प्रमुख रहें। इस धारा के काव्य में समाज में जो घटित हो रहा है प्रगतिवादी कवियों ने उसे ही अपनी कविताओं के माध्यम से हमारे समक्ष रखा है। 1943 ई. में अज्ञेय द्वारा तारसप्तक के प्रकाशन से 'प्रयोगवाद' की स्थापना होती है। प्रयोगवादी कवि काव्य में नए प्रयोग पर बल देते हैं। उनका कहना था कि सारे प्रतिमान, सारे बिम्ब पुराने हो गए हैं अतः काव्य में नए प्रतिमानों की, नए बिंबों की आवश्यकता है। इन कवियों ने केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म नहीं माना, बल्कि काव्य के कला पक्ष और रूप पक्ष पर भी बल दिया। प्रयोगवादी कवियों ने समाज की तुलना में व्यक्ति को, उनके अनुभवों को महत्ता प्रदान की।

नयी कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप है। 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से डॉ. रामविलस शर्मा नयी कविता का आरंभ मानते है। क्षणबोध, वैयक्तिक अनुभूति, व्यक्ति की स्वतंत्रता, लघु मानव की महत्ता, अकेलापन का चित्रण आदि इस कविता की पहचान है। नयी कविताओं में कवियों ने सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। धर्मवीर भारती ने नयी कविता

को पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति का भीतर पलते हुये मानव हृदय की कविता है।

समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा है 'नवगीत। छठे दशक के उत्तरार्द्ध में इसकी रूप रेखा तैयार हुई। जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से नवगीत ने अपना अनुभव जोड़े रखा। इस विधा आम-आदमी के दुख और संघर्ष के गीत गाये गए हैं। नवगीत में चमत्कार एवं आडंबर के स्थान पर सरल व सपाट भाषा का प्रयोग किया गया है।

नयी कविता आंदोलन के बाद जिस काव्य धारा आंदोलन का आगमन होता है उसे समकालीन कविता कहा गया। समकालीन कविता समाज की मान्यताओं से मोह भंग की कविता है। अतः साठोत्तरी कविता में अस्वीकृति, असंतोष और विद्रोह का स्वर बहुत स्पष्ट रूप में सामने आया। यह स्वर कहीं व्यंग्य रूप में तो कहीं खुले रूप में उभरे। जीवन की प्रामाणिक अनुभूतियों को जीवन परिवेश में अभिव्यक्त किया गया।

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, स्त्री चेतना और जनजातीय चेतना की कविताएँ अधिक मात्रा में लिखी गयी हैं। आठवें एवं नौवें दशक से हिन्दी में दलित साहित्य का सृजन देखा जा सकता है। दलित चेतना से जुड़ाव व उसके प्रभाव निराला की कविताओं में देखा जा सकता है। निराला की काव्य चेतना का मूल आधार सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की पीड़ा से मानव को मुक्ति दिलाना है। यह चेतना दलित चेतना से निर्मित है।

नागार्जुन एक जनवादी कवि के रूप में अपने समय-समाज की विसंगतियों को यथार्थ रूप में चित्रित करते हैं। नागार्जुन की कविताओं में समाज में बढ़ती बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, अकाल तथा अभावभरी जिंदगी का यथार्थ आदि दिखाई देता है। दलित चेतना के रूप में रामकुमार वर्मा द्वारा रचित 'एकलव्य' को साठोत्तरी कविता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। 'एकलव्य' में सदियों से उपेक्षित दलित-चेतना का अद्वितीय धनुर्धर एकलव्य अपना परिचय देता है। नरेश मेहता द्वारा रचित 'शबरी' में भी दलित-चेतना का रूप उभरा है। साठोत्तरी कविता में दलित चेतना की प्रतीक शबरी को सम्मानीय रूप प्रदान किया गया। साठोत्तरी कविता के दलित चेतना काव्य में जगदीश गुप्त का महत्वपूर्ण योगदान है। काव्य के क्षेत्र में जगदीश गुप्त द्वारा रचित दलित-चेतना पर आधारित काव्य 'शम्बूक' मील का पत्थर साबित हुआ। रामधारी सिंह दिनकर की रचनाएँ दलितों, शोषितों, उपेक्षितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दर्शाती हैं, साथ ही उनकी कविता सामाजिक जड़ता तथा सामाजिक विषमता को तोड़ने के लिए संघर्ष का भाव जगाती है। दिनकर की इस विधान की सर्जन है 'रश्मिरथी' जिसका नायक कर्ण उपेक्षितों, दलितों एवं अपमानितों का प्रतिनिधि है।

प्रथम राष्ट्रीय-कोकिला सुभद्रा कुमारी चौहान ने नारी चेतना को उस वक्त जगाया जब स्त्रियों को केवल परदे के अंदर रहने की अनुमति हुआ करती थी। उन्होंने 'झाँसी की रानी' जैसी कालजयी कविता लिखकर समस्त नारी जाति को लक्ष्मी बाई की तरह वीरांगना बनने की प्रेरणा देकर नारी जागरण का उद्घोष किया। वहीं दूसरी तरफ आधुनिक काल के समकालीन कवि अरुण कमल मानवीय व्यवस्था के निर्माण हेतु आकुलता परिलक्षित होती है। समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में होने वाला परिवर्तन भी आज की कविताओं में देखने को मिलता है।